॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

# तेजोबिन्दु उपनिषद

# विषय सूची


तेजोबिन्दु उपनिषद ..... 3

प्रथम अध्याय: पहला अध्याय ..... 4

द्वितीय अध्याय: दूसरा अध्याय ..... 20

तृतीय अध्याय: तीसरा अध्याय ..... 33

चतुर्थ अध्याय: चौथा अध्याय ..... 53

पंचम अध्याय: पाँचवाँ अध्याय ..... 78

षष्ठ अध्याय: छठा अध्याय ..... 110

शान्तिपाठ ..... 143

॥ श्री हरि ॥

# ॥ तेजोबिन्दु उपनिषद ॥

## तेजोबिन्दु उपनिषद

यत्र चिन्मात्रकलना यात्यपह्नवमञ्जसा ।
तच्चिन्मात्रमखण्डैकरसं ब्रह्म भवाम्यहम् ॥

जिस चैतन्य स्वरूप संसार कि रचना शीघ्र दिन रात्रि में हो रही है, वह चिन्मात्र अखंड एकरस व्यापक ब्रह्म मैं हूँ।

ॐ सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥

तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

॥ श्री हरि ॥

# ॥ तेजोबिन्दु उपनिषद॥

## प्रथम अध्याय: पहला अध्याय

ॐ तेजोबिन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदिसंस्थितम् ।
आणवं शाम्भवं शान्तं स्थूलं सूक्ष्मं परं च यत् ॥ १॥

ॐ मायिक जगत् से परे हृदयाकाशमें अवस्थित प्रणवस्वरूप तेजोमय बिन्दुका ध्यान ही परम ध्यान है। वह तेजोमय बिन्दु का ध्यान आणव अर्थात अत्यन्त सूक्ष्म उपाय से साधने योग्य, शाम्भव अर्थात शिव रूपता की प्राप्ति कराने वाला एवं शाक्त अर्थात गुरु की शक्ति से ही साध्य है। इसी प्रकार स्थूल, सूक्ष्म तथा इन दोनोंसे परे सर्वातीत फलस्वरूप भी है।॥१॥

दुःखाढ्यं च दुराराध्यं दुष्प्रेक्ष्यं मुक्तमव्ययम् ।
दुर्लभं तत्स्वयं ध्यानं मुनीनां च मनीषिणाम् ॥ २॥

बुद्धिमान् मुनियों के लिए भी उस बिन्दु के ध्यान की साधना बड़ी कठिन है, वह कठिनता से आराधित (सिद्ध) होता है। वह दुर्दर्श है। उसका आश्रयण कठिनता से हो पाता है। वह कठिनाई से ही लक्षित होता है। वह दुस्तर है, उस ध्यान को अन्त तक निभा लेना अत्यन्त कठिन है॥२॥

यताहारो जितक्रोधो जितसङ्गो जितेन्द्रियः ।
निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारो निराशीरपरिग्रहः ॥ ३॥

अगम्यागमकर्ता यो गम्याऽगमयमानसः ।
मुखे त्रीणि च विन्दन्ति त्रिधामा हंस उच्यते ॥ ४॥

आहार को जीतकर अर्थात मिताहारी होकर, क्रोध को अपने वश में करके, समस्त संगों से तटस्थ होकर, इन्द्रियों पर विजय करके, सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से रहित होकर, अहंकार को त्यागकर, समस्त आशाओं को छोड़कर एवं संग्रह हीन होकर तथा दूसरों को जो अगम्य है, उसे भी प्राप्त करने के दृढ़ निश्चय से युक्त होकर, केवल गुरु सेवा का ही प्रयोजन रखने वाला साधक इस ध्यान का मुख्य अधिकारी है। इस तेजोमय बिन्दु के ध्यान में साधक लोग वैराग्य, उत्साह एवं गुरु भक्ति इन तीन प्रमुख साधनों को उपलब्ध करते हैं; अतः यह हंस विशुद्ध तत्त्व त्रिधामा कहा जाता है॥३-४॥

परं गुह्यतमं विद्धि ह्यस्ततन्द्रो निराश्रयः ।
सोमरूपकला सूक्ष्मा विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥५॥

यह ध्यान करने योग्य तेजो बिन्दु परम गोपनीय एवं अधिष्ठान रूप है। यह सबको प्रतीत न होने के कारण अव्यक्त है, ब्रह्म स्वरूप है; इसका कोई अधिष्ठान नहीं है। यही सभी का आधार है। यह आकाश के समान व्यापक है, सूक्ष्म कलात्मक एवं भगवान् विष्णु का प्रसिद्ध परम पद अथवा परमधाम भी यही है। ॥५॥

त्रिवक्त्रं त्रिगुणं स्थानं त्रिधातुं रूपवर्जितम् ।
निश्चलं निर्विकल्पं च निराकारं निराश्रयम् ॥६॥

यह तीनों लोकों का उत्पत्ति स्थान, त्रिगुणमय, सबका आश्रय, त्रिभुवन स्वरूप, निराकार, गतिहीन, समस्त विकल्पों से रहित, बिना किसी आधार एवं आश्रय का स्वप्रतिष्ठान स्वरूप है। ॥६॥

उपाधिरहितं स्थानं वाङ्मनोऽतीतगोचरम् ।
स्वभावं भावसङ्ग्राह्यमसङ्घातं पदाच्च्युतम् ॥ ७॥

यह समस्त उपाधियों से रहित, स्थिति, वाणी प्रभृति इन्द्रियों एवं मन की गति से परे, स्वभाव की भावना, अपने वास्तविक स्वरूप के चिन्तन द्वारा ही ग्राह्य तथा समष्टि और व्यष्टिवाचक पदों से भी अगम्य है॥५-७॥

अनानानन्दनातीतं दुष्प्रेक्ष्यं मुक्तिमव्ययम् ।
चिन्त्यमेवं विनिर्मुक्तं शाश्वतं ध्रुवमच्युतम् ॥ ८॥

यह तेजोबिन्दु आनन्द स्वरूप, विषय-सुखों से परे, बड़ी कठिनाई से साक्षात् होनेवाला, अजन्मा, अविनाशी, चित्त की वृत्तियों से विनिर्मुक्त, शाश्वत, निश्चल तथा नाश रहित है।

तद्ब्रह्मणस्तदध्यात्मं तद्विष्णोस्तत्परायणम् ।
अचिन्त्यं चिन्मयात्मानं यद्व्योम परमं स्थितम् ॥ ९॥

यही ब्रह्म स्वरूप है, यही अध्यात्म स्वरूप है, यही विष्णु स्वरूप है, यही निष्ठा, परम मर्यादा और यही परम आश्रय है। चिंतन करने से भी दुसाध्य जो ऐसा चिन्मय आत्मा है, वह परम आकाश रूप से स्थित है।

अशून्यं शून्यभावं तु शून्यातीतं हृदि स्थितम् ।
न ध्यानं च न च ध्याता न ध्येयो ध्येय एव च ॥ १०॥

वह शून्य न होने पर भी शून्य के समान है और शून्य से परे स्थित है। वह न ध्यान है, न ध्यान करने वाला है और न ध्येय है; तब भी सदा ध्यान करने योग्य अथवा ध्येय स्वरूप ही है।

सर्वं च न परं शून्यं न परं नापरात्परम् ।
अचिन्त्यमप्रबुद्धं च न सत्यं न परं विदुः ॥ ११॥

वह सर्वस्व रूप और सबसे परे है। शून्य स्वरूप है। उस परमतत्त्व से परे कुछ भी नहीं है। यही परात्पर है। यही अचिन्त्य है। उसमें जागरण आदि का व्यापार नहीं है। उसे ज्ञानी महात्मा सत्य रूप से ही जानते हैं। ॥११॥

मुनीनां सम्प्रयुक्तं च न देवा न परं विदुः ।

लोभं मोहं भयं दर्पं कामं क्रोधं च किल्बिषम् ॥ १२॥

शीतोष्णे क्षुत्पिपासे च सङ्कल्पकविकल्पकम् ।
न ब्रह्मकुलदर्पं च न मुक्तिग्रन्थिसञ्चयम् ॥ १३॥

न भयं न सुखं दुःखं तथा मानावमानयोः ।
एतद्भावविनिर्मुक्तं तद्ग्राह्यं ब्रह्म तत्परम् ॥ १४॥

यह मुनियों से संबंधित नहीं है, देवताओं से भी संबंधित नहीं है, यह सर्व संबंध से रहित सबसे परे है। आत्मज्ञान में यह तेजोमय बिन्दु ही मुनियों के योग्य अर्थात मुनियों का आराध्य तत्त्व है और देवता उसे परम तत्त्व रूप ही जानते हैं। लोभ, मोह, भय, अहंकार, काम और क्रोध के परायण तथा पापों में लगे हुए लोग, सर्दी-गर्मी के द्वन्द्वों में आसक्त, भूख-प्यास की चिन्ता एवं विविध संकल्प-विकल्पों में संलग्न, ब्राह्मण (उच्च) वंश में उत्पत्ति का गर्व रखने वाले और मुक्ति प्रतिपादक शास्त्रों के केवल संग्रह में आसक्त (केवल शास्त्रज्ञानी) उस तेजोबिन्दु को नहीं जान पाते । तथा वह भय, सुख-दुःख तथा मान अपमान आदि में फंसे हुए लोगों को भी नहीं प्राप्त होता । जो इन समस्त दूषित भावों से छूटे हुए हैं, उन्हीं के द्वारा यह परात्पर ब्रह्म प्राप्त होने योग्य है। उन्हीं के द्वारा वह परात्पर ब्रह्म प्राप्त होने योग्य है॥१२-१४॥

यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः ।

आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः ॥ १५॥

प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा ।
आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यङ्गानि वै क्रमात् ॥ १६॥

यम, नियम, त्याग, मौन, देश और काल, आसन, मूलबन्ध देह की समानता और दृष्टि की स्थिति प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा, आत्म ध्यान और समाधि यह योग क्रम से अंग कहे हैं ॥१५-१६॥

सर्वं ब्रह्मेति वै ज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः ।
यमोऽऽयमिति सम्प्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ॥ १७॥

यम का स्वरूप सर्व ब्रह्म है, इस प्रकार के ज्ञान से और इन्द्रिय समूह का संयम यह 'यम' कहा जाता है। इस प्रकार कहे हुए यम का बारंबार अभ्यास करना चाहिए ॥१७॥

सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः ।
नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः ॥ १८॥

नियम का स्वरूप सजातीय अर्थात मैं असंग ब्रह्म हूँ इस प्रकार का प्रवाह और विजातीय का मैं जीव हूँ इस प्रकार तिरस्कार है। यह परानन्द रूप नियम विद्वानों से किया जाता है ॥१८॥

त्यागः प्रपञ्चरूपस्य सच्चिदात्मावलोकनात् ।
त्यागो हि महता पूज्यः सद्यो मोक्षप्रदायकः ॥ १९॥

त्याग ही प्रपंच रूप से उस सद चित आत्मा का अवलोकन करवा सकता है। त्याग अत्यन्त पूज्य ब्रह्मविद्या-दाता गुरु, शीघ्र मोक्षदाता है। इसलिए त्याग का सेवन करो ॥१९॥

यस्माद्वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
यन्मौनं योगिभिर्गम्यं तद्भजेत्सर्वदा बुधः ॥ २०॥

मौन मन वाणी सहित जिसको न प्राप्त कर के निवृत्त होती है। ऐसे योगियों को प्राप्त होने योग्य मौन को  पण्डित जन सदा आचरण करते हैं। ॥२०॥

वाचो यस्मान्निवर्तन्ते तद्वक्तुं केन शक्यते ।
प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः ॥ २१॥

जो वाणी का विषय न हो उसे कौन कह सकता है। यद्यपि प्रपंच का कथन हो सकता है तो भी वह शब्द से रहित अनिर्वचनीय है ॥२१॥

इति वा तद्भवेन्मौनं सर्वं सहजसंज्ञितम् ।
गिरां मौनं तु बालानामयुक्तं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २२॥

अथवा जो सब स्वाभाविक रूप से स्वतः सिद्ध हो जाए वह 'मौन' है । वाणी का मौन तो बालकों के लिए है, वह ब्रह्म-वादियों के लिये अयोग्य है ॥२२॥

आदावन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते ।
येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः ॥ २३॥

जिसमें आदि अन्त और मध्य में जगत् नहीं है, जिस करके यह हमेशा व्याप्त है, वह देश निर्जन कहा गया है ॥२२॥

कल्पना सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः ।
कालशब्देन निर्दिष्टं ह्यखण्डानन्दमद्वयम् ॥ २४॥

ब्रह्मा आदि सब भूतों की कल्पना केवल एक निमेष[1] से है और अखण्ड आनन्दं अद्वितीय ब्रह्मकाल शब्द से कहा गया है ॥२४॥

सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम् ।
आसनं तद्विजानीयादन्यत्सुखविनाशनम् ॥ २५॥

[1] जितनी देर में पलक बन्द किये जायें उस कालका का १६२००वां भाग

जिसमें नित्य ब्रह्म का चितवन सुख से हो उसको आसन जानना चाहिए जो इससे अन्य प्रकार का है, वह सुख का नाश करने वाला आसन है ॥२५॥

सिद्धये सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठानमद्वयम् ।
यस्मिन्सिद्धिं गताः सिद्धास्तत्सिद्धासनमुच्यते ॥ २६॥

सिद्धासन सिद्धि प्राप्त करने के लिये सब भूतों के आदि रूप और विश्व का अद्वितीय अधिष्ठान ही आसन है । जिसमें ठहरने से सिद्धि को सिद्धि प्राप्त हुई, है उसको 'सिद्ध आसन' कहते हैं ॥२६ ॥

यन्मूलं सर्वलोकानां यन्मूलं चित्तबन्धनम् ।
मूलबन्धः सदा सेव्यो योग्योऽसौ ब्रह्मवादिनाम् ॥ २७॥

जो सर्व लोकों का मूल है, जो समस्त चित्त का मूल और समस्त चित्त का बन्धन है, वही मूल बंध सदा सेवन योग्य है, वही ब्रह्मवादियों के सेवन करने योग्य है ॥२७॥

अङ्गानां समतां विद्यात्समे ब्रह्मणि लीयते ।
नो चेन्नैव समानत्वमृजुत्वं शुष्कवृक्षवत् ॥ २८॥

समान ब्रह्म में लीन होने के लिए तपस्या करते हुए अंगों की समानता प्राप्त करना अर्थात सूखे वृक्ष के समान सीधा खड़ा रहना समानता है ॥२८॥

दृष्टीं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत् ।
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी ॥ २९॥

ज्ञानमयी दृष्टि के द्वारा जगत् को ब्रह्ममय देखने वाली दृष्टि ही परम उदार है। केवल नासिका के अग्रभाग को देखने वाली दृष्टि उदार नहीं है ॥२९॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत् ।
दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी ॥ ३०॥

अथवा जहां द्रष्टा, दर्शन और दृश्य का विराम हो जाए अर्थात समरूपता प्राप्त हो जाए, वैसी ही दृष्टि प्राप्त करने ने लिए उद्यम करना कर्तव्य है। केवल नासिका के अग्रभाग को देखने वाली दृष्टि रखना ही कर्तव्य नहीं है ॥३०॥

चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात् ।
निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते ॥ ३१॥

चित्त आदि समस्त भावों में ब्रह्म रूप की भावना रखकर समस्त वृतियों का रोकना प्राणायाम कहलाता है ॥३१॥

निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरितः ।
ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरुच्यते ॥ ३२॥

प्रपंच का निषेध अर्थात व्यावहारिक वृत्तियों का त्याग ही 'रेचक कहलाता है। 'मैं ब्रह्म ही हूँ' यह वृत्ति पूरक वायु प्राणायाम कहलाता है ॥३२॥

ततस्तद्वृत्तिनैश्चल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः ।
अयं चापि प्रबुद्धानामज्ञानां घ्राणपीडनम् ॥ ३३॥

ब्रह्माकार वृत्ति की निश्चलता कुम्भक प्राणायाम है। इस प्रकार का कुम्भक प्राणायाम ज्ञानियों के लिये है। अज्ञानियों के लिये केवल नासिका को दबाना है ॥३३॥

विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चित्तरञ्जकम् ।
प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः ॥ ३४॥

विषयों को आत्मा से देखकर मन का चैतन्य हो जाना ही 'प्रत्याहार' जानना चाहिये । उसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिये ॥३४॥ .

यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात् ।
मनसा धारणं चैव धारणा सा परा मता ॥ ३५॥

जहां जहां मन जाता है वहां वहां ब्रह्म के देखने से मन की जो धारणा होती है वह धारणा उत्तम मानी गई है ॥३५ ॥

ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थितिः ।
ध्यानशब्देन विख्यातः परमानन्ददायकः ॥ ३६॥

'मैं ही ब्रह्म हूँ! इस प्रकार की निरालम्ब सवृत्ति से परमानन्द देने वाली स्थिति का नाम 'ध्यान' है ॥३६॥

निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते ॥ ३७॥

निर्विकार बुद्धि वृत्ति ब्रह्माकार होकर फिर वृत्ति का विस्मरण होना समाधि कहलाती है ॥३७॥

इमं चाकृत्रिमानन्दं तावत्साधु समभ्यसेत् ।
लक्ष्यो यावत्क्षणात्पुंसः प्रत्यक्त्वं सम्भवेत्स्वयम् ॥ ३८॥

जब तक इस प्रकार के अकृत्रिम अर्थात वास्तविक आनन्द की प्राप्ति न हो तो तब तक साधु को अच्छी प्रकार से अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से पुरुष का लक्ष्य स्वयं प्रत्यक्ष हो जाता है ॥३८॥

ततः साधननिर्मुक्तः सिद्धो भवति योगिराट् ।
तत्स्वं रूपं भवेत्तस्य विषयो मनसो गिराम् ॥ ३९॥

इसके पश्चयात योगीराज 'साधन से मुक्त होकर सिद्ध होता है तब उसके मन और वाणी का अविषय अपना हो जाता है।॥३६॥

समाधौ क्रियमाणे तु विघ्नान्यायान्ति वै बलात् ।
अनुसन्धानराहित्यमालस्यं भोगलालसम् ॥ ४०॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! परन्तु समाधि करते हुये विघ्न बलपूर्वक अवश्य ही आते हैं। अनुसंधान का त्याग, आलस्य, भोग की इच्छा ॥४०॥

लयस्तमश्च विक्षेपस्तेजः स्वेदश्च शून्यता ।
एवं हि विघ्नबाहुल्यं त्याज्यं ब्रह्मविशारदैः ॥ ४१॥

लय, अन्धकार, विक्षेप, तेज, पसीना और शून्यता इस प्रकार के बहुत से विघ्न ब्रह्म ज्ञानियों को त्यागने चाहिएं ॥४१॥

भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता ।
ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तया पूर्णत्वमभ्यसेत् ॥ ४२॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! भाव वृत्ति से भावना है, शून्य वृत्ति से शून्यता है, ब्रह्म वृत्ति से पूर्णता है। उस ब्रह्मवृत्ति से ही पूर्णता का अभ्यास करना चाहिए ॥४२॥

ये हि वृत्तिं विहायैनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम् ।
वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः ॥ ४३॥

अर्थ ब्रह्म वृत्ति से रहित की श्रुति निन्दा करती है जो मनुष्य इस परम पवित्र ब्रह्म नाम वाली वृत्ति को छोड़ते हैं, वह पशुओं के समान व्यर्थ ही इस पृथ्वी पर जीवित हैं ॥४३॥

ये तु वृत्तिं विजानन्ति ज्ञात्वा वै वर्धयन्ति ये ।
ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये ॥ ४४॥

ब्रह्मवृति सहित पुरुष की श्रुति स्तुति करती है। जो इस वृत्ति को जानते हैं और जान कर उसे बढ़ाते हैं, वह पुरुष धन्य हैं तीनों लोकों में वन्दना करने योग्य है ॥४४॥

येषां वृत्तिः समा वृद्धा परिपक्का च सा पुनः ।
ते वै सद्ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शब्दवादिनः ॥ ४५॥

हे स्वामी कार्तिकेय! पुनः जिनकी चित्त वृत्ति समत्व होकर वृद्ध ओर परिपक्व हुई है वही सत्य ब्रह्मभाव को प्राप्त हुए हैं और दूसरे ब्रह्म शब्द वादी नहीं प्राप्त होते ॥४५॥

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः ।
तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यान्ति च ॥ ४६॥

ब्रह्म वार्ता में कुशल वृत्तिहीन ओर जो राग वाले हैं वे भी अज्ञानता के कारण बारम्बार जन्म-मरण में आते जाते हैं ॥४६॥

निमिषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना ।
यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकादयः ॥ ४७॥

वह ज्ञानी ब्रह्म बुद्धि कि वृत्ति के बिना ब्रह्म आदि, सनकादि, शुकादि के सामने आधे क्षण भी स्थित नहीं होते ॥४७॥

कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते ।
कारणं तत्त्वतो नश्येत्कार्याभावे विचारतः ॥ ४८॥

कार्य कारण भाव में विचार की कर्तव्यता जिसका कार्य कारण रूप होता है उसके कार्य में कारण ही उत्पन्न होता है । इस प्रकार कार्य के अभाव का विचार करने से स्वरूप से कारण नाश हो जाता है। पुत्र के होने से पिता की सिद्धि है, पुत्र के अभाव से पिता शब्द की जनक में प्रवृत्ति नहीं ऐसा जानो ॥४८॥

अथ शुद्धं भवेद्वस्तु यद्वै वाचामगोचरम् ।
उदेति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानं ततः परम् ॥ ४९॥

जब वाणी की अविषय रूप वस्तु शुद्ध होती है, तब शुद्ध चित्त वालों को परम वृत्ति के ज्ञान का उदय होता है। ॥४६॥

भावितं तीव्रवेगेन यद्वस्तु निश्चयात्मकम् ।
दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत् ॥ ५०॥

तीन वेग से भावना की हुई जो वस्तु निश्चय स्वरूप है उसका दृश्य अदृश्य करके ब्रह्म आकार रूप से चिन्तवन करना चाहिए ॥५०॥

विद्वान्नित्यं सुखे तिष्ठेद्धिया चिद्रसपूर्णया ॥

बुद्धि को चैतन्य रस से पूर्ण करके विद्वान् नित्य सुख में विश्राम करे ॥१॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १॥

॥ श्री हरि ॥

# ॥ तेजोबिन्दु उपनिषद॥

## द्वितीय अध्याय: दूसरा अध्याय

अथ ह कुमारः शिवं पप्रच्छाऽखण्डैकरस-
चिन्मात्रस्वरूपमनुब्रूहीति । स होवाच परमः शिवः ।

कार्तिकेय कुमार ने शिव जी से पूछा कि अखण्ड एक रस चिन्मात्र का स्वरूप मैं जानने कि इच्छा रखता हूँ कृपया वह मुझ से कहिए। यह सुनकर परम शिव बोले:

अखण्डैकरसं दृश्यमखण्डैकरसं जगत् ।
अखण्डैकरसं भावमखण्डैकरसं स्वयम् ॥ १॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! अखण्ड का रस दृश्य कल्पित है। अखण्ड का रस जगत है। अखण्ड का रस भाव है। अखण्ड का रस स्वयं ब्रह्म है ॥१॥

अखण्डैकरसो मन्त्र अखण्डैकरसा क्रिया ।
अखण्डैकरसं ज्ञानमखण्डैकरसं जलम् ॥२॥

अखण्ड का रस मन्त्र है । अखण्ड का रस यज्ञस्वरूप होने से क्रिया है, अखण्ड का रस ज्ञान है, अखण्ड का रस जल है । ॥२॥

अखण्डैकरसा भूमिरखण्डैकरसं वियत् ।
अखण्डैकरसं शास्त्रमखण्डैकरसा त्रयी ॥ ३॥

अखण्ड का रस अन्नादि होने से पृथ्वी है, अखण्ड का रस आकाश है । अखण्ड का रस शास्त्र है, अखण्ड का रस श्रुति अर्थात तीनों वेद है ॥३॥

अखण्डैकरसं ब्रह्म चाखण्डैकरसं व्रतम् ।
अखण्डैकरसो जीव अखण्डैकरसो ह्यजः ॥ ४॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! अखण्ड का रस ब्रह्म है, ब्रह्म नाम व्यापक का है। अखण्ड का रस व्रत है। अखण्ड एक रस जीव है, अखण्ड का रस अज है ॥४॥

अखण्डैकरसो ब्रह्मा अखण्डैकरसो हरिः ।
अखण्डैकरसो रुद्र अखण्डैकरसोऽस्म्यहम् ॥ ५॥

अखण्ड एक रस ब्रह्मा है, अखण्ड एक रस विष्णु है। अखण्ड एक रस रुद्र अर्थात एकादश रुद्र है । अखण्ड एकरस मैं हूँ।॥५॥

अखण्डैकरसो ह्यात्मा ह्यखण्डैकरसो गुरुः ।
अखण्डैकरसं लक्ष्यमखण्डैकरसं महः ॥ ६॥

अखण्ड एकरस आत्मा है, अखण्ड एकरस गुरु[2] है । अखण्ड एकरस लक्ष्य है, अखण्ड एकरस 'महर्लोक 'हैं। महर्लोक से चौदह लोकों का ग्रहण है ।।६॥

अखण्डैकरसो देह अखण्डैकरसं मनः ।
अखण्डैकरसं चित्तमखण्डैकरसं सुखम् ॥ ७॥

हे षडानन ! अखण्ड का रस  देह अर्थात यह स्वरूप है। अखण्ड एकरस मन अन्तःकरण है । अखण्ड एक रस चित्त अर्थात वृत्ति है । अखण्ड का रस  सुख है ॥७॥

अखण्डैकरसा विद्या अखण्डैकरसोऽव्ययः ।
अखण्डैकरसं नित्यमखण्डैकरसं परम् ॥ ८॥

अखण्ड एकरस विद्या अर्थात ब्रह्म विद्या है। अखण्ड एकरस अव्यय है। अखण्ड एकरस नित्य है, अखण्ड एकरस परम है ॥८॥

अखण्डैकरसं किञ्चिदखण्डैकरसं परम् ।
अखण्डैकरसादन्यन्नास्ति नास्ति षडानन ॥ ९॥

[2] गकार नाम अन्धकार का है, रु नाम प्रकाश का है, दोनों की एकता का नाम परम ब्रह्म है, यही गुरु शब्द का लक्ष्य है।

अखण्ड का रस  किंचित् है, अखण्ड एकरस पर है। हे षडानन ! अखण्ड एकरस से भिन्न कुछ नहीं है, कुछ नहीं है ॥६॥

अखण्डैकरसान्नास्ति अखण्डैकरसान्न हि ।
अखण्डैकरसात्किञ्चिदखण्डैकरसादहम् ॥ १०॥

अखण्ड का रस  से भिन्न कुछ नहीं है। अखण्ड एकरस से भिन्न कुछ नहीं है। अखण्ड का रस  से किंचित् है। अखण्ड एकरस मैं हूँ ॥१०॥

अखण्डैकरसं स्थूलं सूक्ष्मं चाखण्डरूपकम् ।
अखण्डैकरसं वेद्यमखण्डैकरसो भवान् ॥ ११॥

अखण्ड एकरस स्थूल है, सूक्ष्म अखंड एकरस स्वरूप वाला है, अखंड एकरस वेद्य अर्थात जानने योग्य है। अखंड एकरस आप है । ॥११॥

अखण्डैकरसं गुह्यमखण्डैकरसादिकम् ।
अखण्डैकरसो ज्ञाता ह्यखण्डैकरसा स्थितिः ॥१२॥

अखंड एकरस गुह्य है, अखंड एकरस रसादिक है । अखंड एकरस जानने वाला है, अखंड एक रस स्थिति है ॥१२॥

अखण्डैकरसा माता अखण्डैकररसः पिता ।

अखण्डैकरसो भ्राता अखण्डैकरसः पतिः ॥ १३॥

अखंड एकरस माता अर्थात जननी ) है, अखंड एकरस पिता अर्थात जनक है। अखंड एक रस भाई है, अखंड एकरस पति है ॥१३॥

अखण्डैकरसं सूत्रमखण्डैकरसो विराट् ।
अखण्डैकरसं गात्रमखण्डैकरसं शिरः ॥ १४॥

अखंड एकरस सूत्रात्मा है, अखंड एकरस विराट् अर्थात स्थूल सृष्टि समष्टि का अभिमानी है। अखंड एक रस शरीर है, अखंड एकरस शिर है ॥१४॥

अखण्डैकरसं चान्तरखण्डैकरसं बहिः ।
अखण्डैकरसं पूर्णमखण्डैकरसामृतम् ॥ १५॥

अखंड एकरस भीतर है, अखंड एकरस बाहर है । अखंड एकरस पूर्ण है, अखंड एकरस अमृत है ॥१५॥

अखैण्डैकरसं गोत्रमखण्डैकरसं गृहम् ।
अखण्डैकरसं गोप्यमखण्डैकरसशशी ॥ १६॥

अखंड एक रस गोत्र अर्थात जाति अभिमानी देवता है, अखंड एक रस घर है। अखंड एकरस गुप्त रखने योग्य है, अखण्ड एक रस चन्द्र है ॥१६॥

अखण्डैकरसास्तारा अखण्डैकरसो रविः ।
अखण्डैकरसं क्षेत्रमखण्डैकरसा क्षमा ॥ १७॥

अखंड एकरस तारे हैं, अखंड एकरस सूर्य है । अखंड एकरस क्षेत्र है, अखंड एकरस पृथ्वी है ॥१७॥

अखण्ड का रस  शान्त अखण्डैकरसोऽगुणः ।
अखण्डैकरसः साक्षी अखण्डैकरसः सुहृत् ॥ १८॥

अखंड एकरस शान्त है, अखंड एकरस निर्गुण । अखंड एकरस साक्षी है, अखंड एकरस सुहृत् अर्थात अन्यो पकारी है ॥१८॥

अखण्डैकरसो बन्धुरखण्डैकरसः सखा ।
अखण्डैकरसो राजा अखण्डैकरसं पुरम् ॥ १९॥

अखंड एकरस बन्धु है, अखंड एकरस सखा है। अखंड एकरस राजा है, अखंड एकरस नगर है ॥१९॥

अखण्डैकरसं राज्यमखण्डैकरसाः प्रजाः ।
अखण्डैकरसं तारमखण्डैकरसो जपः ॥ २०॥

अखण्ड एकरस राज्य है, अखंड एकरस प्रजा है, अखंड एकरस स्वर अर्थात आदि ध्वनि है, अखंड एकरस जप है ॥२०॥

अखण्डैकरसं ध्यानमखण्डैकरसं पदम् ।
अखण्डैकरसं ग्राह्यमखण्डैकरसं महत् ॥ २१॥

अखण्ड एक रस  ध्यान है, अखंड एक रस पद अर्थात (चरण व स्थान ) है, . अखडैकरस ग्रहण करने योग्य है, अखंड एकरस महान है ॥२१॥

अखण्डैकरसं ज्योतिरखण्डैकरसं धनम् ।
अखण्डैकरसं भोज्यमखण्डैकरसं हविः ॥ २२॥

अखंड एकरस ज्योति है, अखण्ड एकरस धन अथवा सम्पत्ति है, अखण्ड एकरस  भोजन है, अखंड एकरस हवि अर्थात चरु है ॥२२॥

अखण्डैकरसो होम अखण्डैकरसो जपः ।
अखण्डैकरसं स्वर्गमखण्डैकरसः स्वयम् ॥ २३॥

अखंड एक रस हवन है, अखंड एकरस जप है, अखण्ड एक रस स्वर्ग का सुख है, अखंड एकरस आप है ॥२३॥

अखण्डैकरसं सर्वं चिन्मात्रमिति भावयेत् ।
चिन्मात्रमेव चिन्मात्रमखण्डैकरसं परम् ॥ २४॥

सब कुछ अखण्ड एक रस  और चिन्मात्र है, इस प्रकार की भावना करनी चाहिए। अखंड एक ऐसा परम चिन्मात्र ही चिन्मात्र है ॥२४॥

भववर्जितचिन्मात्रं सर्वं चिन्मात्रमेव हि ।
इदं च सर्वं चिन्मात्रमयं चिन्मयमेव हि ॥ २५॥

संसार से रहित चिन्मात्र है और समस्त संसारी चिन्मात्र ही हैं। यह सभी चिन्मात्रमयं निश्चय चिन्मय ही है ॥२५॥

आत्मभावं च चिन्मात्रमखण्डैकरसं विदुः ।
सर्वलोकं च चिन्मात्रं वत्ता मत्ता च चिन्मयम् ॥ २६॥

आत्मभाव और चिन्मात्र को अखंड एकरस जानना चाहिए,
सर्वलोक के चिन्मात्र तुम्हें और अपने आप को चिन्मय जानो ॥२६॥

आकाशो भूर्जलं वायुरग्निर्ब्रह्मा हरिः शिवः ।
यत्किञ्चिद्यन्न किञ्चिच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ २७॥

आकाश, भूमि, जल, वायु, अग्नि, विष्णु, शिव, किंचित् तथा जो किंचित् नहीं है सभी चिन्मात्र ही है ॥२७॥

अखण्डैकरसं सर्वं यद्यच्चिन्मात्रमेव हि ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ २८॥

सभी अखंड एकरस है, जो भी है वन सभी चिन्मात्र ही है। भूत वर्तमान और भविष्य सभी चिन्मात्र ही है ॥२८॥

द्रव्यं कालं च चिन्मात्रं ज्ञानं ज्ञेयं चिदेव हि ।
ज्ञाता चिन्मात्ररूपश्च सर्वं चिन्मयमेव हि ॥ २९॥

द्रव्य और काल चिन्मात्र है। ज्ञान, ज्ञेय ही चित् ही है। ज्ञाता चिन्मात्र रूप है और सर्व चिन्मय ही है ॥२९॥

सम्भाषणं च चिन्मात्रं यद्यच्चिन्मात्रमेव हि ।
असच्च सच्च चिन्मात्रमाद्यन्तं चिन्मयं सदा ॥ ३०॥

बोलना चिन्मात्र है, यह हो भी समस्त जगत में व्याप्त है वह चिन्मात्र ही है, असत् और सत् चिन्मात्र है ॥३०॥

आदिरन्तश्च चिन्मात्रं गुरुशिष्यादि चिन्मयम् ।
दृग्दृश्यं यदि चिन्मात्रमस्ति चेच्चिन्मयं सदा ॥ ३१॥

आदि और अन्त चिन्मात्र है, गुरु शिष्य आदि चिन्मय है। यदि दृष्टि और दृश्य चिन्मात्र है सो सदा चिन्मय ही है ॥३१॥

सर्वाश्चर्यं हि चिन्मात्रं देहं चिन्मात्रमेव हि ।
लिङ्गं च कारणं चैव चिन्मात्रान्न हि विद्यते ॥ ३२॥

सर्व आश्चर्य ही चिन्मात्र है, देह चिन्मात्र है, लिंग कारण चिन्मात्र है, सिवाय चिन्मात्र के विद्यमान नहीं रहते ॥३२॥

अहं त्वं चैव चिन्मात्रं मूर्तामूर्तादिचिन्मयम् ।
पुण्यं पापं च चिन्मात्रं जीवश्चिन्मात्रविग्रहः ॥ ३३॥

मैं और तुम भी चिन्मात्र हैं, मूर्त, अमूर्त आदि चिन्मय है, पुण्य पाप भी चिन्मात्र है, जीव चिन्मात्र स्वरूप है ॥३३॥

चिन्मात्रान्नास्ति सङ्कल्पश्चिन्मात्रान्नास्ति वेदनम् ।
चिन्मात्रान्नास्ति मन्त्रादि चिन्मात्रान्नास्ति देवता ॥ ३४॥

चिन्मात्र के सिवाय संकल्प नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय जानना नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय मन्त्रादि नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय देवता नहीं है ॥३४॥

चिन्मात्रान्नास्ति दिक्पालाश्चिन्मात्राद्व्यावहारिकम् ।
चिन्मात्रात्परमं ब्रह्म चिन्मात्रान्नास्ति कोऽपि हि ॥ ३५॥

चिन्मात्र के सिवाय दिक्पाल नहीं है, चिन्मात्र से व्यवहार है, चिन्मात्र से परब्रह्म है, चिन्मात्र के सिवाय कोई भी नहीं है ॥३५॥

चिन्मात्रान्नास्ति माया च चिन्मात्रान्नास्ति पूजनम् ।
चिन्मात्रान्नास्ति मन्तव्यं चिन्मात्रान्नास्ति सत्यकम् ॥ ३६॥

चिन्मात्र के सिवाय माया नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय पूजन नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय मानने योग्य नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय सत्यता नहीं है ॥३६॥

चिन्मात्रान्नास्ति कोशादि चिन्मात्रान्नास्ति वै वसु ।
चिन्मात्रान्नास्ति मौनं च चिन्मात्रान्नस्त्यमौनकम् ॥३७॥

चिन्मात्र के सिवाय कोषादि खजाना नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय वसु धन नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय मौन नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय अमौन नहीं है ॥३७॥

चिन्मात्रान्नास्ति वैराग्यं सर्वं चिन्मात्रमेव हि ।
यच्च यावच्च चिन्मात्रं यच्च यावच्च दृश्यते ॥३८॥

चिन्मात्र के सिवाय वैराग्य नहीं है, सर्व चिन्मात्र ही है, जो और जितना चिन्मात्र है, जो और जितना दीखता है ॥३८॥

यच्च यावच्च दूरस्थं सर्वं चिन्मात्रमेव हि ।
यच्च यावच्च भूतादि यच्च यावच्च लक्ष्यते ॥ ३९॥

जो और जितना दूर-स्थित है, जो और जितने भूतरूप हैं, जो और जितने जाने जाते हैं सब चिन्मात्र हैं ॥३९॥

यच्च यावच्च वेदान्ताः सर्वं चिन्मात्रमेव हि ।
चिन्मात्रान्नास्ति गमनं चिन्मात्रान्नास्ति मोक्षकम् ॥ ४०॥

जो और जितने वेदान्त शास्त्र हैं सब चिन्मात्र हैं। चिन्मात्र के सिवाय गमन नहीं है, चिन्मात्र के सिवाय मोक्ष नहीं है ॥४०॥

चिन्मात्रान्नास्ति लक्ष्यं च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ।
अखण्डैकरसं ब्रह्म चिन्मात्रान्न हि विद्यते ॥ ४१॥

चिन्मात्र के सिवाय लक्ष्य नहीं है, सब चिन्मात्र ही है। अखण्ड का रस ब्रह्म चिन्मात्र के सिवाय विद्यमान नहीं हैं ॥४१॥

शास्त्रे मयि त्वयीशे च ह्यखण्डैकरसो भवान् ।
इत्येकरूपतया यो वा जानात्यहं त्विति ॥ ४२॥

शास्त्र में, मुझ में, तुझ में और ईश में अखण्ड का रस आप है। इस प्रकार जो एकरूपता से अथवा मैं ही हूँ, इस प्रकार जानता है ॥४२॥

सकृज्ज्ञानेन मुक्तिः स्यात्सम्यग्ज्ञाने स्वयं गुरुः ॥ ४३॥

उसको एक बार ही ऐसा जानने से मुक्ति होती है । यथार्थ जानने से वह स्वयं गुरु है।

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

॥ श्री हरि ॥

# ॥ तेजोबिन्दु उपनिषद॥

## तृतीय अध्याय: तीसरा अध्याय

कुमारः पितरमात्मानुभवमनुब्रूहीति पप्रच्छ ।
स होवाच परः शिवः ।

कार्तिकेय कुमार ने पिता से पूछा-आत्मा का अनुभव पुनः कहिये, मैं यह सुनने का अभिलाषी हूँ। शिव बोले-

परब्रह्मस्वरूपोऽहं परमानन्दमस्म्यहम् ।
केवलं ज्ञानरूपोऽहं केवलं परमोऽस्म्यहम् ॥ १॥

मैं परब्रह्म स्वरूप हूँ, मैं परमानन्द स्वरूप हूँ, मैं केवलज्ञान हूँ, मैं केवल परम हूँ ॥१॥

केवलं शान्तरूपोऽहं केवलं चिन्मयोऽस्म्यहम् ।
केवलं नित्यरूपोऽहं केवलं शाश्वतोऽस्म्यहम् ॥ २॥

मैं केवल शान्त-स्वरूप हूँ, मैं केवल चिन्मय हूँ, मैं केवल नित्यस्वरूप हूँ, मैं ही केवल सनातन हूँ ॥२॥

केवलं सत्त्वरूपोऽहमहं त्यक्त्वाहमस्म्यहम् ।
सर्वहीनस्वरूपोऽहं चिदाकाशमयोऽस्म्यहम् ॥ ३॥

मैं केवल सत्य रूप हूँ, देह अभिमान को छोड़ कर मैं ही मैं हूँ, मैं सर्व रहित स्वरूप हूँ, मुझ में ही समस्त प्रपञ्च स्थित है, मैं चिदाकाशमय हूँ ॥३॥

केवलं तुर्यरूपोऽस्मि तुर्यातीतोऽस्मि केवलः ।
सदा चैतन्यरूपोऽस्मि चिदानन्दमयोऽस्म्यहम् ॥ ४॥

मैं केवल तुर्यरूप हूँ, मैं केवल तुर्यातीत हूँ, मैं सदा चैतन्य हूँ, मैं सच्चिदानन्दमय हूँ ॥४॥

केवलाकाररूपोऽस्मि शुद्धरूपोऽस्म्यहं सदा ।
केवलं ज्ञानरूपोऽस्मि केवलं प्रियमस्म्यहम् ॥ ५॥

मैं केवल आकाररूप हूँ, मैं सदा शुद्धरूप हूँ, मैं केवल ज्ञान स्वरूप हूँ, मैं केवल प्रियरूप हूँ ॥५॥

निर्विकल्पस्वरूपोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरामयः ।
सदाऽसङ्गःस्वरूपोऽस्मि निर्विकारोऽहमव्ययः ॥ ६॥

मैं निर्विकल्प-स्वरूप हूँ, चेष्टा-रहित हूँ, रोग रहित हूँ, सदा असंग स्वरूप हूँ, मैं अव्यय निर्विकार हूँ ॥६॥

सदैकरसरूपोऽस्मि सदा चिन्मात्रविग्रहः ।
अपरिच्छिन्नरूपोऽस्मि ह्यखण्डानन्दरूपवान् ॥ ७॥

मैं सदा एकरसरूप हूँ, सदा चिन्मात्र स्वरूप हूँ, अपरिच्छिन्न रूप हूँ, अखण्ड आनन्द वाला हूँ ॥७॥

सत्परानन्दरूपोऽस्मि चित्परानन्दमस्म्यहम् ।
अन्तरान्तररूपोऽहमवाङ्मनसगोचरः ॥८॥

मैं सत्य परमानन्द रूप हूँ, मैं चित् परानन रूप हूँ, मैं वाणी और मन का अविषय भीतर अथवा बाहर का रूप हूँ ॥८॥

आत्मानन्दस्वरूपोऽहं सत्यानन्दोऽस्म्यहं सदा ।
आत्मारामस्वरूपोऽस्मि ह्ययमात्मा सदाशिवः ॥ ९॥

मैं आत्मानन्द-स्वरूप हूँ, मैं सदा सत्यानन्द हूँ, मैं आत्माराम स्वरूप हूँ, मैं ही सदा शिव आत्मा हूँ ॥९॥

आत्मप्रकाशरूपोऽस्मि ह्यात्मज्योतिरसोऽस्म्यहम् ।
आदिमध्यान्तहीनोऽस्मि ह्याकाशसदृशोऽस्म्यहम् ॥ १०॥

मैं आत्म प्रकाश रूप हूँ, मैं आत्म ज्योति रस हूँ, मैं आदि मध्य और अन्त से रहित हूँ, मैं आकाश के समान हूँ ॥१०॥

नित्यशुद्धचिदानन्दसत्तामात्रोऽहमव्ययः ।
नित्यबुद्धविशुद्धैकसच्चिदानन्दमस्म्यहम् ॥ ११ ॥

मैं नित्य शुद्ध बुद्ध, चित् आनन्द, अव्यय सत्ता मात्र हूँ, मैं नित्य बुद्ध विशुद्ध एक सच्चिदानन्द हूँ ॥११॥

नित्यशेषस्वरूपोऽस्मि सर्वातीतोऽस्म्यहं सदा ।
रूपातीतस्वरूपोऽस्मि परमाकाशविग्रहः ॥ १२॥

मैं नित्य शेष स्वरूप हूँ, मैं सदा सबसे अतीत हूँ, रूप से अतीत स्वरूप, परम आकाश स्वरूप हूँ ॥१२॥

भूमानन्दस्वरूपोऽस्मि भाषाहीनोऽस्म्यहं सदा ।
सर्वाधिष्ठानरूपोऽस्मि सर्वदा चिद्घनोऽस्म्यहम् ॥ १३॥

मैं भूमा आनन्द स्वरूप हूँ, मैं सदा भाषारहित हूँ, सर्व का अधिष्ठानरूप हूँ, मैं हमेशा चैतन्यघन हूँ ॥१३॥

देहभावविहीनोऽस्मि चिन्ताहीनोऽस्मि सर्वदा ।
चित्तवृत्तिविहीनोऽहं चिदात्मैकरसोऽस्म्यहम् ॥ १४॥

मैं देहभाव से रहित हूँ, हमेशा चिंता से रहित हूँ, मैं चित्तवृत्ति रहित हूँ, एक रस चिदात्मा हूँ ॥१४॥

सर्वदृश्यविहीनोऽहं दृग्रूपोऽस्म्यहमेव हि ।
सर्वदा पूर्णरूपोऽस्मि नित्यतृप्तोऽस्म्यहं सदा ॥ १५॥

मैं सब दृश्य से रहित हूँ, मैं ही दृष्टिरूप हूँ, हमेशा पूर्णरूप हूँ, मैं सदा नित्य तृप्त हूँ ॥१५॥

अहं ब्रह्मैव सर्वं स्यादहं चैतन्यमेव हि ।
अहमेवाहमेवास्मि भूमाकाशस्वरूपवान् ॥ १६॥

मैं ब्रह्म ही सर्व रूप हूँ, मैं चैतन्य ही हूँ, भूमि आकाश स्वरूप मैं ही हूँ ॥१६॥

अहमेव महानात्मा ह्यहमेव परात्परः ।
अहमन्यवदाभामि ह्यहमेव शरीरवत् ॥ १७॥

मैं महान् आत्मा हूँ, मैं ही परात्पर हूँ ; मैं ही अन्य के समान भासित होता हूँ', मैं ही शरीर के समान हूँ॥१७॥

अहं शिष्यवदाभामि ह्ययं लोकत्रयाश्रयः ।
अहं कालत्रयातीत अहं वेदैरुपासितः ॥ १८॥

मैं शिष्य के समान भासित होता हूँ, तीनों लोकों का आश्रय हूँ, मैं तीनों काल से अतीत हूँ, मैं वेदों से उपासना किया जाता हूँ ॥१८॥

अहं शास्त्रेण निर्णीत अहं चित्ते व्यवस्थितः ।
मत्त्यक्तं नास्ति किञ्चिद्वा मत्त्यक्तं पृथिवी च वा ॥ १९॥

मैं शास्त्र से निर्णय किया गया हूँ, मैं चित्त में स्थित हूँ, मुझ सिवाय कुछ नहीं है, मुझ सिवाय पृथ्वी नहीं है ॥१६॥

मयातिरिक्तं यद्यद्वा तत्तन्नास्तीति निश्चिनु ।
अहं ब्रह्मास्मि सिद्धोऽस्मि नित्यशुद्धोऽस्म्यहं सदा ॥ २०॥

मुझ सिवाय जो भी विश्व में स्थित है वह नहीं है, ऐसा निश्चय करो। मैं ब्रह्म हूँ, सिद्ध हूँ, सदा नित्य शुद्ध हूँ ॥२०॥

निर्गुणः केवलात्मास्मि निराकारोऽस्म्यहं सदा ।
केवलं ब्रह्ममात्रोऽस्मि ह्यजरोऽस्म्यमरोऽस्म्यहम् ॥ २१॥

मैं निर्गुण केवल आत्मा हूँ, मैं सदा निराकार हूँ, केवल ब्रह्ममात्र हूँ, मैं अजर अमर हूँ ॥२१॥

स्वयमेव स्वयं भामि स्वयमेव सदात्मकः ।
स्वयमेवात्मनि स्वस्थः स्वयमेव परा गतिः ॥ २२॥

मैं अपने आप ही अर्थात अपने प्रकाश से भासित होता हूँ, मैं स्वयं ही सदात्मा स्वरूप हूँ, मैं स्वयं ही आत्मा में स्थित परम गति हूँ ॥२२॥

स्वयमेव स्वयं भञ्जे स्वयमेव स्वयं रमे ।
स्वयमेव स्वयं ज्योतिः स्वयमेव स्वयं महः ॥ २३॥

मैं स्वयं ही भोक्ता हूँ, स्वयं ही अपने में रमण करता हूँ, स्वयं ही ज्योति हूँ, स्वयं ही महान् हूँ ॥२३॥

स्वस्यात्मनि स्वयं रंस्ये स्वात्मन्येव विलोकये ।
स्वात्मन्येव सुखासीनः स्वात्ममात्रावशेषकः ॥ २४॥

आप ही अपने आत्मा को देखने को अपने आत्मा में आप प्रवेश करता हूँ। अपने आत्मा की विशेष मात्र से अपने आत्मा में ही सुख से बैठा हुआ हूँ ॥२४॥

स्वचैतन्ये स्वयं स्थास्ये स्वात्मराज्ये सुखे रमे ।
स्वात्मसिंहासने स्थित्वा स्वात्मनोऽन्यन्न चिन्तये ॥ २५॥

अपने चैतन्य में आपने आप स्थित होता हूँ, स्वयं अपने आत्म-राज्य के सुख में रमण करता हूँ, स्वयं अपनी आत्मा के सिंहासन पर बैठकर अपने आत्मा से अन्य का चितवन नहीं करता ॥२५॥

चिद्रूपमात्रं ब्रह्मैव सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
आनन्दघन एवाहमहं ब्रह्मास्मि केवलम् ॥ २६॥

चित्तरूप मात्र ब्रह्म ही सच्चिदानन्द रूप अद्वितीय आनन्द घन मैं ही हूँ। मैं ही केवल ब्रह्मा हूँ ॥२६॥

सर्वदा सर्वशून्योऽहं सर्वात्मानन्दवानहम् ।
नित्यानन्दस्वरूपोऽहमात्माकाशोऽस्मि नित्यदा ॥ २७॥

मैं हमेशा सब से शून्य हूँ, मैं सर्व आत्मानन्द वाला हूँ, मैं नित्यानन्द स्वरूप हूँ, मैं नित्य आत्म प्रकाश रूप हूँ ॥२७॥

अहमेव हृदाकाशश्चिदादित्यस्वरूपवान् ।
आत्मनात्मनि तृप्तोऽस्मि ह्यरूपोऽस्म्यहमव्ययः ॥ २८॥

मैं ही चैतन्य आदित्य स्वरूप वाला हृद्याकाश हूँ। परमात्मा से तृप्त आत्मा मैं हूँ। मैं अव्यय रूप रहित स्वरूप वाला हूँ ॥२८॥

एकसङ्ख्याविहीनोऽस्मि नित्यमुक्तस्वरूपवान् ।
आकाशादपि सूक्ष्मोऽहमाद्यन्ताभाववानहम् ॥ २९॥

मैं नित्य मुक्त स्वरूप वाला एक की संख्या से रहित हूँ, मैं आकाश से भी सूक्ष्म हूँ, मैं आदि अन्त के अभाव वाला हूँ, ॥२९॥

सर्वप्रकाशरूपोऽहं परावरसुखोऽस्म्यहम् ।
सत्तामात्रस्वरूपोऽहं शुद्धमोक्षस्वरूपवान् ॥ ३०॥

मैं सर्व प्रकाश रूप हूँ, मैं पर अवर सुख हूँ, मैं सत्ता मात्र स्वरूप हूँ, शुद्ध मोक्ष स्वरूप वाला मैं हूँ ॥३०॥

सत्यानन्दस्वरूपोऽहं ज्ञानानन्दघनोऽस्म्यहम् ।
विज्ञानमात्ररूपोऽहं सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ ३१॥

मैं सत्य आनन्द स्वरूप हूँ, मैं ज्ञान आनन्दघन हूँ, मैं सचिदानन्दं लक्षण वाला विज्ञान मात्र स्वरूप हूँ ॥३१॥

ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्मणोऽन्यन्न किञ्चन ।
तदेवाहं सदानन्दं ब्रह्मैवाहं सनातनम् ॥ ३२॥

यह सर्व ब्रह्म है, ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है, वह ही सदानन्द मैं हूँ, मैं ही सनातन ब्रह्म हूँ ॥३२॥

त्वमित्येतत्तदित्येतन्मत्तोऽन्यन्नास्ति किञ्चन ।
चिच्चैतन्यस्वरूपोऽहमहमेव शिवः परः ॥ ३३॥

तुम और यह, वह और यह मुझ सिवाय कुछ नहीं है, मैं ही चित् चैतन्यस्वरूप हूँ, मैं ही परम शिव हूँ ॥३३॥

अतिभावस्वरूपोऽहमहमेव सुखात्मकः ।
साक्षिवस्तुविहीनत्वात्साक्षित्वं नास्ति मे सदा ॥ ३४॥

अत्यन्त भाव स्वरूप मैं हूँ, मैं ही सुख स्वरूप हूँ, साक्ष्य वस्तु के अभाव से मुझ में सदा साक्षीपना नहीं है ॥३४॥

केवलं ब्रह्ममात्रत्वादहमात्मा सनातनः ।
अहमेवादिशेषोऽहमहं शेषोऽहमेव हि ॥ ३५॥

केवल ब्रह्ममात्र-पने से मैं सनातन आत्मा हूँ, मैं ही आदि शेष हूँ, मैं ही मैं शेष हूँ ॥३५॥

नामरूपविमुक्तोऽहमहमानन्दविग्रहः ।
इन्द्रियाभावरूपोऽहं सर्वभावस्वरूपकः ॥ ३६॥

मैं नामरूप रहित हूँ, मैं आनन्द स्वरूप हूँ सर्वभाव स्वरूप वाला, इन्द्रियों का अभावरूप हूँ ॥३६॥

बन्धमुक्तिविहीनोऽहं शाश्वतानन्दविग्रहः ।
आदिचैतन्यमात्रोऽहमखण्डैकरसोऽस्म्यहम् ॥ ३७॥

मैं सदानन्द-स्वरूप बन्ध और मोक्ष से रहित हूँ, मैं आदि चैतन्य मात्र हूँ, मैं अखण्ड का रस हूँ ॥३७॥

वाङ्मनोऽगोचरश्चाहं सर्वत्र सुखवानहम् ।
सर्वत्र पूर्णरूपोऽहं भूमानन्दमयोऽस्म्यहम् ॥ ३८॥

मैं वाणी और मन का अविषय हूँ, मैं सर्वत्र सुख वाला हूँ, मैं सर्वत्र पूर्ण रूप हूँ, मैं भूमानन्दमय हूँ ॥३८॥

सर्वत्र तृप्तिरूपोऽहं परामृतरसोऽस्म्यहम् ।
एकमेवाद्वितीयं सद्ब्रह्मैवाहं न संशयः ॥ ३९॥

मैं सर्व तृप्तरूप हूँ, मैं परम अमृत का रस हूँ। एक अद्वितीय सत् ब्रह्म मैं ही हूँ, इसमें संशय नहीं है ॥३९॥

सर्वशून्यस्वरूपोऽहं सकलागमगोचरः ।
मुक्तोऽहं मोक्षरूपोऽहं निर्वाणसुखरूपवान् ॥ ४०॥

मैं सर्व वेदों का विषय सर्व शून्य-स्वरूप हूँ, मैं मुक्त हूँ, मैं मोक्षरूप हूँ, मैं निर्वाण सुखरूप वाला हूँ ॥४०॥

सत्यविज्ञानमात्रोऽहं सन्मात्रानन्दवानहम् ।
तुरीयातीतरूपोऽहं निर्विकल्पस्वरूपवान् ॥ ४१॥

मैं सत्य विज्ञानमात्र हूँ, मैं सन्मात्र आनन्द वाला हूँ, मैं निर्विकल्प स्वरूप तुरीयातीत रूप हूँ ॥४१॥

सर्वदा ह्यजरूपोऽहं नीरागोऽस्मि निरञ्जनः ।
अहं शुद्धोऽस्मि बुद्धोऽस्मि नित्योऽस्मि प्रभुरस्म्यहम् ॥ ४२॥

मैं सर्वदा अज रूप हूँ, निरंजन निराग हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, नित्य हूँ, मैं प्रभु हूँ ॥४२ ॥

ओङ्कारार्थस्वरूपोऽस्मि निष्कलङ्कमयोऽस्म्यहम् ।
चिदाकारस्वरूपोऽस्मि नाहमस्मि न सोऽस्म्यहम् ॥ ४३॥

मैं ओंकार का अर्थ स्वरूप हूँ, मैं निष्कलंक हूँ, मैं चैतन्याकार-स्वरूप हूँ, न मैं यह हूँ न वह मैं हूँ ॥४३॥

न हि किञ्चित्स्वरूपोऽस्मि निर्व्यापारस्वरूपवान् ।
निरंशोऽस्मि निराभासो न मनो नेन्द्रियोऽस्म्यहम् ॥ ४४॥

व्यापार रहित स्वरूप वाला मैं किंचित् स्वरूप नहीं हूँ, मैं आभास रहित हूँ हूँ और अंशरहित हूँ, न मन हूँ, न इन्द्रिय हूँ ॥४४॥

न बुद्धिर्न विकल्पोऽहं न देहादित्रयोऽस्म्यहम् ।
न जाग्रत्स्वप्नरूपोऽहं न सुषुप्तिस्वरूपवान् ॥ ४५॥

मैं न, बुद्धि हूँ, न विकल्प हूँ, न मैं देहादि तीनों ही हूँ, मैं जाग्रत् स्वरूप नहीं हूँ, न सुषुप्ति स्वरूप वाला हूँ ॥४५॥

न तापत्रयरूपोऽहं नेषणात्रयवानहम् ।
श्रवणं नास्ति मे सिद्धेर्मननं च चिदात्मनि ॥ ४६॥

न मैं तीन ताप रूप हूँ न तीन एषणा वाला हूँ, मुझ चैतन्य आत्मा में श्रवण और मनन सिद्ध नहीं होता ॥४६॥

सजातीयं न मे किञ्चिद्विजातीयं न मे क्वचित् ।
स्वगतं च न मे किञ्चिन्न मे भेदत्रयं क्वचित् ॥ ४७॥

मुझ में कुछ सजातीय नहीं है, न मुझमें कहीं विजातीय है, न मेरा स्वगत है, न मुझ में कहीं तीनों भेद हैं ॥४७॥

असत्यं हि मनोरूपमसत्यं बुद्धिरूपकम् ।
अहङ्कारमसिद्धीति नित्योऽहं शाश्वतो ह्यजः ॥ ४८॥

मनरूप असत्य है, बुद्धिरूप असत्य है, अहंकार की सिद्धि नहीं है, इसलिए मैं शाश्वत और अजन्मा हूँ। ॥४८॥

देहत्रयमसद्विद्धि कालत्रयमसत्सदा ।
गुणत्रयमसत्विद्धि ह्ययं सत्यात्मकः शुचिः ॥ ४९॥

तीनों देहों को असत्य जानो, तीनों काल को हमेशा असत् जानो, तीनों गुणों को असत् जानो, क्योंकि मैं ही एक पवित्र सत्यस्वरूप हूँ ॥४९॥

श्रुतं सर्वमसद्विद्धि वेदं सर्वमसत्सदा ।
शास्त्रं सर्वमसद्विद्धि ह्यहं सत्यचिदात्मकः ॥ ५०॥

सब सुने हुये को असत्य जानो, सब वेदों को सदा असत्य जानो, सर्व शास्त्रों को असत्य जानो, मैं ही सत्य चैतन्यस्वरूप हूँ ॥५०॥

मूर्तित्रयमसद्विद्धि सर्वभूतमसत्सदा ।
सर्वतत्त्वमसद्विद्धि ह्ययं भूमा सदाशिवः ॥ ५१॥

तीनों मूर्तियों को असत् जानो, सब भूतों को सदा असत् जानो, तत्त्वों को असत् जानो, मैं भूमा तीन रिच्छेद से रहित सुखरूप सदा शिव हूँ ॥५१॥

गुरुशिष्यमसद्विद्धि गुरोर्मन्त्रमसत्ततः ।
यद्दृश्यं तदसद्विद्धि न मां विद्धि तथाविधम् ॥ ५२॥

गुरु शिष्य को असत् जानो, गुरु का मन्त्र असत्य जानो, जो दृश्य है उसको असत् जानो, मुझ को ऐसा नहीं जानना, मैं सत्यस्वरूप वाला हूँ ॥५२॥

यच्चिन्त्यं तदसद्विद्धि यन्न्यायं तदसत्सदा ।
यद्धितं तदसद्विद्धि न मां विद्धि तथाविधम् ॥ ५३॥

जो चिन्तवन करने योग्य है उसको असत् जानो, जो न्याय युक्ति दृष्टान्त है उसे सदा असत् जानो, जो हित है उसको असत् जानो, मैं सत्यस्वरूप हूँ मुझ को सत्य ही जानो ॥५३॥

सर्वान्प्राणानसद्विद्धि सर्वान्भोगानसत्त्विति ।
दृष्टं श्रुतमसद्विद्धि ओतं प्रोतमसन्मयम् ॥ ५४॥

सर्व प्राणों को असत् जानो, सर्व भोगों को असत् जानो, देखे हुये और सुने हुये को असत् जानो, ओत प्रोत सर्व असत्यमय है ॥५४॥

कार्याकार्यमसद्विद्धि नष्टं प्राप्तमसन्मयम् ।
दुःखादुःखमसद्विद्धि सर्वासर्वमन्मयम् ॥ ५५॥

कार्याकार्य (कारण) को असत् जानो, नष्ट हुये और प्राप्त हुये को असत् जानो, दुखः अदुख को असत् जानो, सर्व और असर्व को भी असत् जानो ॥५५॥

पूर्णापूर्णमसद्विद्धि धर्माधर्ममसन्मयम् ।
लाभालाभावसद्विद्धि जयाजयमसन्मयम् ॥ ५६॥

अपूर्ण को असत् जानो, धर्म-अधर्म को असत् जानो, लाभ -अलाभ को असत् जानो, जीत-हार को असत् जानो ॥५६ ॥

शब्दं सर्वमसद्विद्धि स्पर्शं सर्वमसत्सदा ।
रूपं सर्वमसद्विद्धि रसं सर्वमसन्मयम् ॥ ५७॥

सर्व शब्दों को असत जानो, सर्व स्पर्शों को असत् जानो, सर्व रूप को असत् जानो, सर्व रसों को असत जानो ॥५७॥

गन्धं सर्वमसद्विद्धि सर्वाज्ञानमसन्मयम् ।
असदेव सदा सर्वमसदेव भवोद्भवम् ॥ ५८॥

सर्व गन्ध को असंख्य जानो। सर्व अज्ञान को असत्य जानो। सदा सम्पूर्ण असत्य जानो। संसार की उत्पत्ति असत्य है ॥५८॥

असदेव गुणं सर्वं सन्मात्रमहमेव हि ।
स्वात्ममन्त्रं सदा पश्येत्स्वात्ममन्त्रं सदाभ्यसेत् ॥ ५९॥

सर्व गुण भी असत्य हैं। मैं असत्य मात्र हूँ। अपने आत्म मन्त्र को सदा देखे । अपने परम मन्त्र का अभ्यास करे ॥५९॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं दृश्यपापं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमन्यमन्त्रं विनाशयेत् ॥ ६०॥

'मैं ब्रह्म हूँ। यह मन्त्र दृश्य पापों का नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र अन्य मन्त्रों का नाश करता है ॥६०॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं देहदोषं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं जन्मपापं विनाशयेत् ॥ ६१॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र देह के दोषों का नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मन्त्र जन्म पाप का नाश करता है ॥६१॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं मृत्युपाशं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं द्वैतदुःखं विनाशयेत् ॥ ६२॥

मैं ब्रह्म हूँ! यह मन्त्र मृत्यु के पाश का नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मन्त्र द्वैत के दुःखों का नाश करता है ॥६२॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं भेदबुद्धिं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चिन्तादुःखं विनाशयेत् ॥ ६३॥

'मैं ब्रह्म हूँ! यह मन्त्र भेदबुद्धि का नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मन्त्र चिन्ता के दुःखों का नाश करता है ॥६३॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं बुद्धिव्याधिं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चित्तबन्धं विनाशयेत् ॥ ६४॥

मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र बुद्धि की व्याधि का नाश करता है । 'मैं ब्रह्म हूँ! यह मन्त्र चित्त के बन्धन का नाश करता है ॥६४॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वव्याधीन्विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वशोकं विनाशयेत् ॥ ६५॥

'मैं ब्रह्म हूँ' यह मन्त्र सर्व व्याधियों का नाश करता है। मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र समस्त शोकों का नाश करता है ॥६५॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं कामादीन्नाशयेत्क्षणात् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं क्रोधशक्तिं विनाशयेत् ॥ ६६॥

'मैं ब्रह्म हूँ। यह मन्त्र कामादि का क्षण में नाश करता है । 'मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र क्रोध शक्ति का नाश करता है ॥६६ ॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चित्तवृत्तिं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सङ्कल्पादीन्विनाशयेत् ॥ ६७॥

'मैं ब्रह्म हूँ' यह मन्त्र चित्तवृत्ति का नाश करता है । 'मैं ब्रह्म हूँ! यह मन्त्र संकल्पादिकों का नाश करता है ॥६७॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं कोटिदोषं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वतन्त्रं विनाशयेत् ॥ ६८॥

'मैं ब्रह्म हूँ। यह मन्त्र करोड़ों दोषों का नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र सर्व तन्त्रों का नाश करता है ॥६८॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमात्माज्ञानं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमात्मलोकजयप्रदः ॥ ६९॥

मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र आत्मा के अज्ञान को नाश करता है। मैं ब्रह्म हूँ! यह मन्त्र आत्मलोक की जय देने वाला है ॥६९॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमप्रतर्क्यसुखप्रदः ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमजडत्वं प्रयच्छति ॥ ७०॥

मैं ब्रह्म हूँ! यह मन्त्र अखण्ड सुख प्रदान करने वाला है । मैं ब्रह्म हूँ! यह मन्त्र चैतन्यता के देने वाला है ॥७०॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमनात्मासुरमर्दनः ।
अहं ब्रह्मास्मि वज्रोऽयमनात्माख्यगिरीन्हरेत् ॥ ७१॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मन्त्र अनात्म रूपी असुर को मारने वाला है। "मैं ब्रह्म हूँ' यह मन्त्र अनात्मरूप पर्वत को गिराने वाला है और अनात्म भाव को हरने वाला है ॥७१॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमनात्माख्यासुरान्हरेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वांस्तान्मोक्षयिष्यति ॥ ७२॥

मैं ब्रह्म हूँ' यह मन्त्र अनात्मा रूपी असुरों को हरण करता है। मैं ब्रह्म हूँ यह मन्त्र उन सबसे छुड़ा देता है ॥७२॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं ज्ञानानन्दं प्रयच्छति ।
सप्तकोटिमहामन्त्रं जन्मकोटिशतप्रदम् ॥ ७३॥

'मैं ब्रह्म हूँ! यह मन्त्र ज्ञान आनन्द को देता है हे कुमार! सात करोड़ महामन्त्र हैं वे सौ करोड़ जन्म देने वाले हैं ॥७३॥

सर्वमन्त्रान्समुत्सृज्य एतं मन्त्रं समभ्यसेत् ।
सद्यो मोक्षमवाप्नोति नात्र सन्देहमण्वपि ॥ ७४॥

इसलिये इन सभी मन्त्रों को त्याग कर इसी मन्त्र (अहं ब्रह्मास्मि) का जो अभ्यास करे वह शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है ॥७४॥

इति तृतीयोध्यायः ॥ ३॥

॥ श्री हरि ॥

# ॥ तेजोबिन्दु उपनिषद॥

## चतुर्थ अध्याय: चौथा अध्याय

कुमारः परमेश्वरं पप्रच्छ जीवन्मुक्तविदेहमुक्तयोः
स्थितिमनुब्रूहीति । स होवाच परः शिवः ।

कार्तिकेय कुमार ने परमेश्वर से पूछा-जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति की स्थिति कहिये, मैं यह सुनने की इच्छा रखता हूँ। सो परम शिव बोले-

चिदात्माहं परात्माहं निर्गुणोऽहं परात्परः ।
आत्ममात्रेण यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ १॥

हे कुमार ! मैं चिदात्मा हूँ, 'परमात्मा हूँ, मैं निर्गुण से परे हूँ। ऐसा जान कर जो आत्म मात्र रूप से स्थित है वह जीवन्मुक्त कहलाता है। ॥१॥

देहत्रयातिरिक्तोऽहं शुद्धचैतन्यमस्म्यहम् ।
ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवनमुक्त उच्यते ॥ २॥

मैं तीन देहों से भिन्न हूँ, मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, मैं ब्रह्म हूँ। इस प्रकार जिसका निश्चय है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥२॥

आनन्दघनरूपोऽस्मि परानन्दघनोऽस्म्यहम् ।
यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः ।
परमानन्दपूर्णो यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ३॥

मैं आनन्दघन हूँ, मैं परानन्दघन हूँ, जिसकी देहादिक नहीं है, जो ब्रह्म ही है। इस प्रकार जिसका निश्चय है, जो परमानन्द पूर्ण है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥३॥

यस्य किञ्चिदहं नास्ति चिन्मात्रेणावतिष्ठते ।
चैतन्यमात्रो यस्यान्तश्चिन्मात्रैकस्वरूपवान् ॥ ४॥

जिसको किंचित् अहंकार नहीं है, जो चिन्मात्र रूप से स्थित है, चिन्मात्र जिसका निश्चय है, जो एक चिन्मात्र स्वरूप वाला है। ॥४॥

सर्वत्र पूर्णरूपात्मा सर्वत्रात्मावशेषकः ।
आनन्दरतिरव्यक्तः परिपूर्णश्चिदात्मकः ॥ ५॥

जो सर्वत्र पूर्णरूप आत्मा है, सर्वत्र आत्म स्वरूप वाला, आनन्द रति वाला, अविकारी, परिपूर्ण चित्त स्वरूप वाला है ॥५॥

शुद्धचैतन्यरूपात्मा सर्वसङ्गविवर्जितः ।
नित्यानन्दः प्रसन्नात्मा ह्यन्यचिन्ताविवर्जितः ॥६॥

शुद्ध चैतन्यरूप सर्व संग से रहित, नित्यानन्द स्वरूप, प्रसन्न आत्मा और जो अन्य चिन्ताओं से रहित है ॥६॥

किञ्चिदस्तित्वहीनो यः स जीवन्मुक्त उच्यते ।
न मे चित्तं न मे बुद्धिर्नाहङ्कारो न चेन्द्रियम् ॥ ७॥

जो किंचित् अस्तित्व से भी रहित है, वह जीवन मुक्त कहलाता है। न मेरा चित्त है, न मेरी बुद्धि और अहंकार है, न इन्द्रियां हैं ॥७॥

न मे देहः कदाचिद्वा न मे प्राणादयः क्वचित् ।
न मे माया न मे कामो न मे क्रोधः परोऽस्म्यहम् ॥ ८॥

न मेरा कभी देह है, न मुझ कहीं प्राणादिक हैं, न मेरी माया है, न मेरा काम है, न मेरा क्रोध है, मैं पर हूँ॥८॥

न मे किञ्चिदिदं वापि न मे किञ्चित्क्वचिज्जगत् ।
न मे दोषो न मे लिङ्गं न मे चक्षुर्न मे मनः ॥ ९॥

न मेरा किंचित् यह है, न मेरा कहीं किंचित् जगत् है, न मेरा, दोष है, न मेरा लिंग शरीर है, न मुझ नेत्र हैं, न मेरा मन है। ॥९॥

न मे श्रोत्रं न मे नासा न मे जिह्वा न मे करः ।
न मे जाग्रन्न मे स्वप्नं न मे कारणमण्वपि ॥ १०॥

न मुझ कान हैं, न मेरी नासिका है, न मेरी जिह्वा है, न मुझ हाथ हैं, न मेरा जाग्रत है, न मेरा स्वप्न है, न मेरा जरा सा भी कारण है ॥१०॥

न मे तुरीयमिति यः स जीवन्मुक्त उच्यते ।
इदं सर्वं न मे किञ्चिदयं सर्वं न मे क्वचित् ॥ ११॥

न मेरा तुरीय है, ऐसा जो है वह जीवन मुक्त कहलाता है। यह सर्व मेरा कुछ नहीं है, यह सब मेरा कहीं नहीं है ॥११॥

न मे कालो न मे देशो न मे वस्तु न मे मतिः ।
न मे स्नानं न मे सन्ध्या न मे दैवं न मे स्थलम् ॥ १२॥

न मेरा काल है, न मेरा देश है, न मेरी वस्तु है, न मेरी बुद्धि है, न मेरा स्नान है, न मेरी सन्ध्या है, न मेरा दैव है, न मेरा मन्दिर है ॥१२॥

न मे तीर्थं न मे सेवा न मे ज्ञानं न मे पदम् ।
न मे बन्धो न मे जन्म न मे वाक्यं न मे रविः ॥ १३॥

न मेरा तीर्थ है, न मेरी सेवा है, न मेरा ज्ञान है, न मेरा पद है, न मेरा बन्धन है, न मेरा जन्म है, न मेरा वचन है, न मेरा सूर्य है ॥१३॥

न मे पुण्यं न मे पापं न मे कार्यं न मे शुभम् ।
ने मे जीव इति स्वात्मा न मे किञ्चिज्जगत्त्रयम् ॥ १४॥

न मेरा पुण्य है, न मेरा पाप है, न मेरा कार्य है, न मेरा शुभ है, न मेरा जीव है, इस प्रकार मेरी अपनी आत्मा में तीनों जगत् किंचित् भी नहीं है ॥१४॥

न मे मोक्षो न मे द्वैतं न मे वेदो न मे विधिः ।
न मेऽन्तिकं न मे दूरं न मे बोधो न मे रहः ॥ १५॥

न मेरा मोक्ष है, न मेरा द्वैत है, न मेरा वेद है न मेरी विधि है, न मुझ पास (समीप) है, न मेरा दूर है, न मेरा बोध है, न मेरा एकांत है॥१५॥

न मे गुरुर्न मे शिष्यो न मे हीनो न चाधिकः ।
न मे ब्रह्म न मे विष्णुर्न मे रुद्रो न चन्द्रमाः ॥ १६॥

न मेरा गुरु है, न मेरा शिष्य है, न मेरा न्यून है; न मेरा अधिक है, न मेरा ब्रह्मा है, न मेरा विष्णु है, न मुझ रुद्र है, न मेरा चन्द्रमा है ॥१६॥

न मे पृथ्वी न मे तोयं न मे वायुर्न मे वियत् ।
न मे वह्निर्न मे गोत्रं न मे लक्ष्यं न मे भवः ॥ १७॥

न मेरी पृथ्वी हैं, न मेरा जल है, न मेरा वायु है, न मेरा आकाश है, न मेरी अग्नि है, न मेरा गोत्र है, न मेरा लक्ष्य है, न मेरा संसार है ॥१७॥

न मे ध्याता न मे ध्येयं न मे ध्यानं न मे मनुः ।
न मे शीतं न मे चोष्णं न मे तृष्णा न मे क्षुधा ॥ १८॥

न मेरा ध्याता है, न मेरा ध्येय है, न मेरा ध्यान है, न मेरा मन है, न मेरा शीत है, न मेरा उष्ण है, न मेरी प्यास है, न मेरी भूख है ॥१८॥

न मे मित्रं न मे शत्रुर्न मे मोहो न मे जयः ।
न मे पूर्वं न मे पश्चान्न मे चोर्ध्वं न मे दिशः ॥ १९॥

न  मेरा मित्र है, न मेरा शत्रु है, न मेरा मोह है, न मेरा जय है, न मेरा आगे है, न मेरा पीछे है, न मेरा उपर है, न मेरी दिशा है, ॥१९॥

न मे वक्तव्यमल्पं वा न मे श्रोतव्यमण्वपि ।
न मे गन्तव्यमीषद्वा न मे ध्यातव्यमण्वपि ॥ २०॥

न मेरा कुछ वक्तव्य अर्थात कहने योग्य  है, न मेरा जरा सा भी श्रोतव्य अर्थात सुनने योग्य है, न मेरा थोड़ा सा भी मन्तव्य है,न मरा जरा सा भी ध्यातव्य है ॥२०॥

न मे भोक्तव्यमीषद्वा न मे स्मर्तव्यमण्वपि ।
न मे भोगो न मे रागो न मे यागो न मे लयः ॥ २१॥

न मेरा जरा सा भी भोक्तव्य है, न मेरा जरा सा भी स्मरण करने योग्य है, न मेरा भोग है, न मेरा राग है, न मेरा योग है, न मेरा लय है ॥२१॥

न मे मौर्ख्यं न मे शान्तं न मे बन्धो न मे प्रियम् ।
न मे मोदः प्रमोदो वा न मे स्थूलं न मे कृशम् ॥ २२॥

न मेरी मूर्खता है, न मेरी शान्ति है, न मेरा बन्ध है, न मेरा प्रिय है, न मेरा मोद है, न मेरा प्रमोद है, न ही मैं मोटा हूँ , न ही मैं पतला हूँ ॥२२॥

न मे दीर्घं न मे ह्रस्वं न मे वृद्धिर्न मे क्षयः ।
अध्यारोपोऽपवादो वा न मे चैकं न मे बहु ॥ २३॥

न मैं लम्बा हूँ, न मैं छोटा हूँ, न मेरी वृद्धि है, न मेरा नाश है, न मेरा अध्यारोप है, न मेरा अपवाद है, न मैं एक हूँ, न ही अनेक हूँ ॥२३॥

न मे आन्ध्यं न मे मान्द्यं न मे पट्विदमण्वपि ।
न मे मांसं न मे रक्तं न मे मेदो न मे ह्यसृक् ॥ २४॥

न मुझ में अन्धपन है, न मुझ में मन्दपना है, मेरी चतुरता जरा सी भी नहीं। न मुझ में मांस है, न मुझ में रक्त है, न मुझ में मेदा है, न मुझ में मजा है ॥२४॥

न मे मज्जा न मेऽस्थिर्वा न मे त्वग्धातु सप्तकम् ।
न मे शुक्लं न मे रक्तं न मे नीलं नमे पृथक् ॥ २५॥

न मुझ में चर्बी है, न मुझ में हड्डियां हैं, न मुझ में त्वचा है, न मुझ में में सात प्रकार की धातु - चार पिता की और तीन माता की हैं। न

ही मैं शुक्ल वर्ण हूँ, न ही मैं रक्तवर्ण हूँ, न मैं नील वर्ण हूँ, न मुझ में कोई पृथक्ता है ॥२५॥

न मे तापो न मे लाभो मुख्यं गौणं न मे क्वचित् ।
न मे भ्रान्तिर्न मे स्थैर्यं न मे गुह्यं न मे कुलम् ॥ २६॥

न मेरा ताप है, न मेरा लाभ है, न मुझ में मुख्यता है, न मुझ में गौणपना, कुछ भी नहीं है। न मुझ में भ्रान्ति है, न मुझ में स्थिरता है, न मुझ में गुप्तता है, न मुझ में कुलत्व अर्थात कुल का नाम है ॥२६॥

न मे त्याज्यं न मे ग्राह्यं न मे हास्यं न मे नयः ।
न मे वृत्तं न मे ग्लानिर्न मे शोष्यं न मे सुखम् ॥ २७॥

न मैं त्याज्य हूँ, न ही ग्राह्य हूँ, न मेरा हास्य है, न मेरी नोति है, न मेरी वृत्तिका अर्थात जीविका है, न मुझ में ग्लानि है, न मुझ में सोच है, न मुझ में सुख है ॥२७॥

न मे ज्ञाता न मे ज्ञानं न मे ज्ञेयं न मे स्वयम् ।
न मे तुभ्यं नमे मह्यं न मे त्वं च न मे त्वहम् ॥ २८॥

मुझ में ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप यह त्रिपुटी नहीं है । न मुझ में अपनापन और पराया पन है और न ही ममत्व ही है । न मेरा तुम है, न मेरा मैं हूँ अर्थात मेरा कोई स्वरूप नहीं है। ॥२८॥

न मे जरा न मे बाल्यं न मे यौवनमण्वपि ।
अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मेति निश्चयः ॥ २९॥

न मुझ बुढ़ापा है, न मुझ में बालकपन है, यौवन भी जरा सा नहीं है । हे स्वामी कार्तिकेय ! मैं ब्रह्म हूँ, मैं व्यापक हूँ, यही निश्चय है ॥२९॥

चिदहं चिदहं चेति स जीवन्मुक्त उच्यते ।
ब्रह्मैवाहं चिदेवाहं परो वाहं न संशयः ॥ ३०॥

मैं चैतन्य हूँ , मैं ब्रह्म हूँ, ऐसे निश्चय वाला जीवन्मुक्त कहलाता है। ब्रह्म ही मैं हूँ, चित्त ही मैं हूँ, पर मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है। ॥३०॥

स्वयमेव स्वयं हंसः स्वयमेव स्वयं स्थितः ।
स्वयमेव स्वयं पश्येत्स्वात्मराज्ये सुखं वसेत् ॥ ३१॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! आप ही स्वयं हंसरूप हैं, आप ही स्वयं स्थित हैं, आप स्वयं को ही देखते हैं, आप स्वयं के आत्म राज्य में सुख पूर्वक निवास करें। ॥३१॥

स्वात्मानन्दं स्वयं भोक्ष्येत्स जीवन्मुक्त उच्यते ।
स्वयमेवैकवीरोऽग्रे स्वयमेव प्रभुः स्मृतः ॥ ३२॥

अपने आत्मानंद को जो स्वयं भोगता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है आप ही एक वीर, आप ही प्रभु स्मरण किया गया है। अपने स्वरूप से स्वयं में जो आनन्द माने वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥३२॥

ब्रह्मभूतः प्रशान्तात्मा ब्रह्मानन्दमयः सुखी ।
स्वच्छरूपो महामौनी वैदेही मुक्त एव सः ॥ ३३॥

ब्रह्म-स्वरूप, शान्त आत्मा, ब्रह्मानन्दयुक्त, सुखी, स्वच्छरूप, महामौनी वह विदेहमुक्त है ॥३३॥

सर्वात्मा समरूपात्मा शुद्धात्मा त्वहमुत्थितः ।
एकवर्जित एकात्मा सर्वात्मा स्वात्ममात्रकः ॥ ३४॥

सर्वात्मा, समान रूप आत्मा, शुद्ध आत्मा और मैं के उत्थानरूप, एक से रहित, एक आत्मा, सर्व आत्मा, अपना आत्म मात्र स्वरूप है ॥३४॥

अजात्मा चामृतात्माहं स्वयमात्माहमव्ययः ।
लक्ष्यात्मा ललितात्माहं तूष्णीमात्मस्वभाववान् ॥ ३५॥

अज आत्मा और अमृत आत्मा सब मैं हूँ। स्वयं निर्विकार आत्मा मैं हूँ। लक्ष्य आत्मा, सुन्दर आत्मा मैं हूँ। चुपचाप आत्म-स्वभाव वाला मैं हूँ ॥३५॥

आनन्दात्मा प्रियो ह्यात्मा मोक्षात्मा बन्धवर्जितः ।
ब्रह्मैवाहं चिदेवाहमेवं वापि न चिन्त्यते ॥ ३६॥

आनन्द आत्मा, प्रिय आत्मा, मोक्ष आत्मा बन्ध से रहित ब्रह्म मैं ही हूँ अथवा चित् ही मैं हूँ । इस प्रकार भी वह चिन्तवन नहीं करता ॥३६॥

चिन्मात्रेणैव यस्तिष्ठेद्वैदेही मुक्त एव सः ॥ ३७॥

जो चिन्मात्र से स्थित हो वह ही 'विदेह मुक्त है ॥३७॥

निश्चयं च परित्यज्य अहं ब्रह्मेति निश्चयम् ।
आनन्दभरितस्वान्तो वैदेही मुक्त एव सः ॥ ३८॥

निश्चय में ब्रह्म हूँ, इस निश्चय को भी त्याग कर आनन्द से परिपूर्ण अन्तर वाला हो वह ही विदेह मुक्त है ॥३८॥

सर्वमस्तीति नास्तीति निश्चयं त्यज्य तिष्ठति ।
अहं ब्रह्मास्मि नास्मीति सच्चिदानन्दमात्रकः ॥ ३९॥

सर्व है, तथा नहीं है, इस प्रकार के निश्चय को त्याग कर कहता है मैं ब्रह्म हूँ और नहीं हूँ। इस प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूप मैं हूँ ॥३९॥

किञ्चित्कचित्कदाचिच्च आत्मानं न स्पृशत्यसौ ।
तूष्णीमेव स्थितस्तूष्णीं तूष्णीं सत्यं न किञ्चन ॥ ४०॥

वह किंचित् कहीं का भी आत्मा का स्पर्श नहीं करता । चुप ही स्थित है, चुपचाप और कुछ सत्य नहीं है ॥४०॥

परमात्मा गुणातीतः सर्वात्मा भूतभावनः ।
कालभेदं वस्तुभेदं देशभेदं स्वभेदकम् ॥ ४१॥

वह परमात्मा गुणों से अतीत, सर्वात्मा भूत भावन है । काल-भेद, वस्तु-भेद, स्व-भेद ॥४१॥

किञ्चिद्भेदं न तस्यास्ति किञ्चिद्वापि न विद्यते ।
अहं त्वं तदिदं सोऽयं कालात्मा कालहीनकः ॥ ४२॥

ऐसा उसमें किंचित् भी भेद नहीं है। मैं, तुम, वह, यह किंचित् भी विद्यमान नहीं है । वह काल आत्मा काल से रहित है ॥४२॥

शून्यात्मा सूक्ष्मरूपात्मा विश्वात्मा विश्वहीनकः ।
देवात्मादेवहीनात्मा मेयात्मा मेयवर्जितः ॥ ४३॥

यह शून्य आत्मा, सूक्ष्म रूप आत्मा, विक्ष आत्मा, विश्व से रहित है । देव आत्मा, देव रहित आत्मा मेय आत्मा मेयरहित है ॥४३॥

सर्वत्र जडहीनात्मा सर्वेषामन्तरात्मकः ।
सर्वसङ्कल्पहीनात्मा चिन्मात्रोऽस्मीति सर्वदा ॥ ४४॥

वह सर्वत्र जड़-रहित आत्मा, सब का अन्त आत्मा सब संकल्पों से रहित आत्मा है ऐसा मैं हमेश चिन्मात्र हूँ ॥४४॥

केवलः परमात्माहं केवलो ज्ञानविग्रहः ।
सत्तामात्रस्वरूपात्मा नान्यत्किञ्चिज्जगद्भयम् ॥ ४५॥

मैं केवल परमात्मा हूँ, केवल ज्ञान स्वरूप है। सत्तामात्र नहीं है रूप आत्मा हूँ, मुझमें जगत् का अन्य किंचित् भी भय नहीं है ॥४५॥

जीवेश्वरेति वाक्येति वेदशास्त्राद्यहं त्विति ।

इदं चैतन्यमेवेति अहं चैतन्यमित्यपि ॥ ४६॥

जीव, ईश्वर की वाणी कहाँ? इसी प्रकार वेद शास्त्रादि कहाँ और मैं कहाँ ? यह चैतन्य ही है । मैं भी चैतन्य ही हूँ ॥४६॥

इति निश्चयशून्यो यो वैदेही मुक्त एव सः ।
चैतन्यमात्रसंसिद्धः स्वात्मारामः सुखासनः ॥ ४७॥

जो इस प्रकार के निश्चय से भी शून्य है वह ही विदेह मुक्त है । चैतन्यमात्र संसिद्धि, अपनी आत्मा में प्रसन्नसुख से बैठा हुआ ॥४७॥

अपरिच्छिन्नरूपात्मा अणुस्थूलादिवर्जितः ।
तुर्यतुर्या परानन्दो वैदेही मुक्त एव सः ॥ ४८॥

जो अपरिच्छिन्न अणु स्यूल आदि से रहित तुर्य का तुर्य परानन्द है वह ही विदेहमुक्त है ॥४८॥

नामरूपविहीनात्मा परसंवित्सुखात्मकः ।
तुरीयातीतरूपात्मा शुभाशुभविवर्जितः ॥ ४९॥

वह नाम रूप रहित, संवित् से पर, सुख स्वरूप, तुरीय से अतीत रूप, शुभ अशुभ से रहित है ॥४९॥

योगात्मा योगयुक्तात्मा बन्धमोक्षविवर्जितः ।
गुणागुणविहीनात्मा देशकालादिवर्जितः ॥ ५०॥

वह योगरूप और योगयुक्त आत्मा, बन्ध मोव से रहित है, गुण अगुण से रहित देश कालादि से रहित है ॥५०॥

साक्ष्यसाक्षित्वहीनात्मा किञ्चित्किञ्चिन्न किञ्चन ।
यस्य प्रपञ्चमानं न ब्रह्माकारमपीह न ॥ ५१॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! साक्ष्य साक्षी से रहित यदि ऐसा वह कुछ है ऐसा कहो तो ठीक नहीं है । यह कुछ भी नहीं है। जिसको न प्रपञ्च का आभास है न ब्रहाकार का आभास है ॥५१॥

स्वस्वरूपे स्वयञ्ज्योतिः स्वस्वरूपे स्वयंरतिः ।
वाचामगोचरानन्दो वाङ्मनोगोचरः स्वयम् ॥ ५२॥

वह अपने स्वरूप में स्वयं प्रकाशमान होता है। अपने स्वरूप में स्वयं प्रेम करता है। उसका आनन्द वाणी का आवेषय है और वह स्वयं वाणी और मन का अविषय है ॥५२॥

अतीतातीतभावो यो वैदेही मुक्त एव सः ।
चित्तवृत्तेरतीतो यश्चित्तवृत्त्यवभासकः ॥ ५३॥

इस प्रकार जो पर से भी पर भाव वाला है, वह ही विदेहमुक्त है । चित्त वृत्ति से अतीत जो चित्त वृत्ति का प्रकाशक है ॥५३॥

सर्ववृत्तिविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ।
तस्मिन्काले विदेहीति देहस्मरणवर्जितः ॥ ५४॥

जो सर्व वृत्ति से रहित है, वह ही विदेहमुक्त है । उस काल में 'मैं विदेह ही हूँ इस प्रकार देह स्मरण से वह रहित है ॥५४॥

ईषन्मात्रं स्मृतं चेद्यस्तदा सर्वसमन्वितः ।
परैरदृष्टबाह्यात्मा परमानन्दचिद्धनः ॥ ५५॥

यदि कुछ भी स्मरण हो तो वह सब से युक्त है यानी विदेह नहीं है। उसका बाहरी स्वरूप दूसरों से अदृष्ट है और वह परमानन्द चैतन्यधन है ॥५५॥

परैरदृष्टबाह्यात्मा सर्ववेदान्तगोचरः ।
ब्रह्मामृतरसास्वादो ब्रह्मामृतरसायनः ॥ ५६॥

औरों द्वारा दिखाई न देता हुआ उसका बाह्यात्मा समस्त वेदान्तों का विषय है वह ब्रह्म रूप अमृत का रसास्वाद है, ब्रह्मरूपी अमृत रसायन है ॥५६॥

ब्रह्मामृतरसासक्तो ब्रह्मामृतरसः स्वयम् ।
ब्रह्मामृतरसे मग्नो ब्रह्मानन्दशिवार्चनः ॥ ५७॥

ब्रह्मरूपी अमृत रसयुक्त है, ब्रह्मरूप अमृत का रस आप है, ब्रह्मरूप रस में मग्न होकर ब्रह्मानन्द से शिव का पूजन करता है ॥५७॥

ब्रह्मामृतरसे तृप्तो ब्रह्मानन्दानुभावकः ।
ब्रह्मानन्दशिवानन्दो ब्रह्मानन्दरसप्रभः ॥ ५८॥

ब्रह्मरूप अमृत के रस से तृप्त हुआ वह ब्रह्मानन्द का अनुभव करने वाला है । वह ब्रह्मानन्द और शिवानन्दरूप है और ब्रह्मानन्द रस का प्रकाशन करने वाला है ॥५८॥

ब्रह्मानन्दपरं ज्योतिर्ब्रह्मानन्दनिरन्तरः ।
ब्रह्मानन्दरसान्नादो ब्रह्मानन्दकुटुम्बकः ॥ ५९॥

ब्रह्मानन्द परम ज्योति है, ब्रह्मानन्द अखण्ड है । ब्रह्मानन्द के रस से ब्रह्मानन्द का कुटुम्बरूप नाद है ॥५९॥

ब्रह्मानन्दरसारूढो ब्रह्मानन्दैकचिद्धनः ।
ब्रह्मानन्दरसोद्वाहो ब्रह्मानन्दरसम्भरः ॥ ६०॥

वह ब्रह्मानन्द रसयुक्त है, ब्रह्मानन्द एक चित् घन है और ब्रह्मानन्द रस का प्रवाह है, ब्रह्मानन्द रस से पूर्ण है ॥६०॥

ब्रह्मानन्दजनैर्युक्तो ब्रह्मानन्दात्मनि स्थितः ।
आत्मरूपमिदं सर्वमात्मनोऽन्यन्न कञ्चन ॥ ६१॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! वह ब्रह्मानन्द रूपी मित्रों से युक्त है । ब्रह्मानन्द आत्म में स्थित है। उसके लिये यह सब आत्मरूप है । आत्मा से भिन्न कुछ नहीं है ॥६१॥

सर्वमात्माहमात्मास्मि परमात्मा परात्मकः ।
नित्यानन्द स्वरूपात्मा वैदेही मुक्त एव सः ॥ ६२॥

सब आत्मा है, मैं आत्मा हूँ, परमात्मा हूँ, शिवानन्द स्वरूप आत्मा हूँ, ऐसा अनुभव करे वह ही विदेह मुक्त है ॥६२॥

पूर्णरूपो महानात्मा प्रीतात्मा शाश्वतात्मकः ।
सर्वान्तर्यामिरूपात्मा निर्मलात्मा निरात्मकः ॥ ६३॥

जो पूर्णरूप महान् आत्मा है, जिसको आत्मा ही प्रिय है । जो शाश्वत सवका अन्तर्यामी रूप है, निर्मल और निरात्मा स्वरूप है ॥६३॥

निर्विकारस्वरूपात्मा शुद्धात्मा शान्तरूपकः ।
शान्ताशान्तस्वरूपात्मा नैकात्मत्वविवर्जितः ॥ ६४॥

जो निर्विकार स्वरूप, शुद्ध, शान्त रूप वाला तथा शान्त और अशान्त दोनों स्वरूप है, जिसको आत्मा के नानापन का भाव नहीं है ॥ ६४॥

जीवात्मपरमात्मेति चिन्तासर्वस्ववर्जितः ।
मुक्तामुक्तस्वरूपात्मा मुक्तामुक्तविवर्जितः ॥ ६५॥

जो जीव आत्मा परमात्मा इस प्रकार के सब चितवन से रहित, मुक्त अमुक्त स्वरूप है और मुक्त अमुक्त भाव से रहित है ॥६५॥

बन्धमोक्षस्वरूपात्मा बन्धमोक्षविवर्जितः ।
द्वैताद्वैतस्वरूपात्मा द्वैताद्वैतविवर्जितः ॥ ६६॥

बन्ध मोक्ष स्वरूप और बन्ध मोक्ष से रहित, द्वैत अद्वैत स्वरूप और द्वैताद्वैत से रहित है ॥६६॥

सर्वासर्वस्वरूपात्मा सर्वासर्वविवर्जितः ।
मोदप्रमोदरूपात्मा मोदादिविनिवर्जितः ॥ ६७॥

सर्व असर्व स्वरूप और सर्व असर्व से रहित मोद-प्रमोद रूप और मोद-प्रमोद से रहित है ॥६७॥

सर्वसङ्कल्पहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ।
निष्कलात्मा निर्मलात्मा बुद्धात्मापुरुषात्मकः ॥ ६८॥

तथा संकल्पों से रहित वह ही विदेहमुक्त है, जो पाप रहित निर्मल प्रबुद्ध पुरुष स्वरूप है ॥६८॥

आनन्दादिविहीनात्मा अमृतात्मामृतात्मकः ।
कालत्रयस्वरूपात्मा कालत्रयविवर्जितः ॥ ६९॥

आनन्दादि से रहित अमृतमय और अमृत स्वरूप, तीन काल स्वरूप और तीनों कालों से रहित है ॥६९॥

अखिलात्मा ह्यमेयात्मा मानात्मा मानवर्जितः ।
नित्यप्रत्यक्षरूपात्मा नित्यप्रत्यक्षनिर्णयः ॥ ७०॥

जो सम्पूर्ण, प्रमाण न करने योग्य, जो प्रमाण रूप और प्रमाण से रहित, नित्य-प्रत्यक्ष रूप, नित्य-प्रत्यक्ष निर्णय किया गया है ॥७०॥

अन्यहीनस्वभावात्मा अन्यहीनस्वयम्प्रभः ।
विद्याविद्यादिमेयात्मा विद्याविद्यादिवर्जितः ॥ ७१॥

अन्य से रहित स्वभाव वाला, अन्य से रहित स्वयं प्रकाशरूप, विद्या और अविद्या से अनुमान करने योग्य, परन्तु विद्या अविद्या से रहित है ॥७१॥

नित्यानित्यविहीनात्मा इहामुत्रविवर्जितः ।
शमादिषट्कशून्यात्मा मुमुक्षुत्वादिवर्जितः ॥ ७२॥

जो नित्य-अनित्य से रहित, यहां और वहां से रहित, शम आदि छहों से (शम, दम, श्रद्धा, समाधानता उपरामता, तितिक्षा षट हैं) रहित है, मुमुक्षता आदि से रहित है ॥७२॥

स्थूलदेहविहीनात्मा सूक्ष्मदेहविवर्जितः ।
कारणादिविहीनात्मा तुरीयादिविवर्जितः ॥ ७३॥

स्थूल देह से रहित, सूक्ष्म देह से रहित, कारण देह से रहित, तुरीयादि से रहित है ॥७३॥

अन्नकोशविहीनात्मा प्राणकोशविवर्जितः ।
मनःकोशविहीनात्मा विज्ञानादिविवर्जितः ॥ ७४॥

अन्नमय कोष से रहित, प्राणमय कोष से रहित, मनोमय कोष से रहित, विज्ञानमय कोष से रहित है ॥७४॥

आनन्दकोशहीनात्मा पञ्चकोशविवर्जितः ।
निर्विकल्पस्वरूपात्मा सविकल्पविवर्जितः ॥ ७५॥

आनन्दमय कोष से रहित तथा पञ्च कोषों से रहित है । जो निर्विकल्प स्वरूप विकल्प से रहित है ॥७५॥

दृश्यानुविद्धहीनात्मा शब्दविद्धविवर्जितः ।
सदा समाधिशून्यात्मा आदिमध्यान्तवर्जितः ॥ ७६॥

दृश्य के सम्बन्ध से रहित और शब्द के सम्बन्ध से रहित है। जो सदा समाधि से शून्य, आदि मध्य और अन्त से रहित है ॥७६॥

प्रज्ञानवाक्यहीनात्मा अहम्ब्रह्मास्मिवर्जितः ।
तत्त्वमस्यादिहीनात्मा अयमात्मेत्यभावकः ॥ ७७॥

प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म इस वाक्य से रहित है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्य से रहित है। 'तत्त्वमसि इस वाक्य से रहित है। 'अयमात्मा ब्रह्म' इस वाक्य से रहित है ॥७७॥

ओङ्कारवाच्यहीनात्मा सर्ववाच्यविवर्जितः ।
अवस्थात्रयहीनात्मा अक्षरात्मा चिदात्मकः ॥ ७८॥

ओंकार का जो वाचक है उससे रहित, सर्व वाच्य से रहित, तीनों अवस्थाओं (जाग्रत् , स्वम, सुषुप्ति) से रहित, नाश रहित चेतन स्वरूप है ॥७८॥

आत्मज्ञेयादिहीनात्मा यत्किञ्चिदिदमात्मकः ।
भानाभानविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ॥ ७९॥

आत्मा अब जिसको ज्ञेय नहीं है, जो कुछ है यह है इस स्वरूप वाला तथा जो भान और अमान से रहित है वह ही विदेहमुक्त है ॥७९॥

आत्मानमेव वीक्षस्व आत्मानं बोधय स्वकम् ।
स्वमात्मानं स्वयं भुङ्क्ष्व स्वस्थो भव षडानन ॥ ८०॥

हे षडानन! आत्मा को ही देख, अपने आत्मा ही को जान, अपने आत्मा को ही आप भोग और स्वस्थ हो ॥८०॥

स्वमात्मनि स्वयं तृप्तः स्वमात्मानं स्वयं चर ।
आत्मानमेव मोदस्व वैदेही मुक्तिको भवेत्युपनिषत् ॥

अपने आत्मा में ही स्वयं तृप्त होकर अपनी आत्मा में स्वयं आप विचर। आत्मा में ही मोद आनन्द कर और विदेह मुक्त हो । यह उपनिषत् है ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥

॥ श्री हरि ॥

# ॥ तेजोबिन्दु उपनिषद॥

## पंचम अध्याय: पाँचवाँ अध्याय

निदाघो नाम वै मुनिः पप्रच्छ ऋभुं
भगवन्तमात्मानात्मविवेकमनुब्रूहीति ।

निदाघ नाम के मुनि ने ऋभु से पूछा-हे भगवन् ! आत्मा अनात्मा का विवेक कहिए।

स होवाच ऋभुः ।

ऋभु बोले :

सर्ववाचोऽवधिर्ब्रह्म सर्वचिन्तावधिर्गुरुः ।
सर्वकारणकार्यात्मा कार्यकारणवर्जितः ॥ १॥

ब्रह्म समस्त वाणियों की अवधि है, गुरु समस्त चिन्ताओं की अवधि है। आत्मा सब का कारण और कार्य है परन्तु स्वयं कारण से रहित है ॥१॥

सर्वसङ्कल्परहितः सर्वनादमयः शिवः ।
सर्ववर्जितचिन्मात्रः सर्वानन्दमयः परः ॥ २॥

वह समस्त संकल्पों से रहित, सर्वनादमय शिव है, सर्व से रहित चिन्मात्र है, सर्व आनन्दमय है, पर है ॥२॥

सर्वतेजःप्रकाशात्मा नादानन्दमयात्मकः ।
सर्वानुभवनिर्मुक्तः सर्वध्यानविवर्जितः ॥ ३॥

सर्व तेजरूप प्रकाशरूप है, नाद आनन्दमय आत्मा है, सब अनुभवों से मुक्त, सर्व ध्यान से रहित है ॥३॥

सर्वनादकलातीत एष आत्माहमव्ययः ।
आत्मानात्मविवेकादिभेदाभेदविवर्जितः ॥ ४॥

सब नाद कलाओं से रहित (अतीत ) अव्यय और आत्मा अनात्मा विवेकादि भेद अभेद से रहित ऐसा यह आत्मा मैं हूँ ॥४॥

शान्ताशान्तादिहीनात्मा नादान्तर्ज्योतिरूपकः ।
महावाक्यार्थतो दूरो ब्रह्मास्मीत्यतिदूरतः ॥ ५॥

शान्त अशान्त से रहित जो नाद का अंतर्ज्योति रूप है, जो महावाक्य के अर्थ अथ से अति दूर है। 'ब्रह्मास्मि' से अति दूर है ॥५॥

तच्छब्दवर्ज्यस्त्वंशब्दहीनो वाक्यार्थवर्जितः ।
क्षराक्षरविहीनो यो नादान्तर्ज्योतिरेव सः ॥ ६॥

तत् शब्द से रहित, त्वं शब्द से रहित तथा वाक्य के अर्थ से रहित है, जो घर-अक्षर से रहित है, वह ही नाद का अंतर्ज्योति है ॥६॥

अखण्डैकरसो वाहमानन्दोऽस्मीति वर्जितः ।
सर्वातीतस्वभावात्मा नादान्तर्ज्योतिरेव सः ॥ ७॥

अखण्ड एकरस अथवा मैं आनन्द हूँ, इससे रहित सबसे अतीत स्वभाव वाला वही नाद का अंतर्ज्योति है ॥७॥

आत्मेति शब्दहीनो य आत्मशब्दार्थवर्जितः ।
सच्चिदानन्दहीनो य एषैवात्मा सनातनः ॥ ८॥

आत्मशब्द से रहित तथा जो आत्मा के शब्दार्थ से रहित है तथा जो सच्चिदानन्द से रहित है ऐसा ही यह सनातन आत्मा है ॥८॥

स निर्देष्टुमशक्यो यो वेदवाक्यैरगम्यतः ।
यस्य किञ्चिद्बहिर्नास्ति किञ्चिदन्तः कियन्न च ॥ ९॥

इसका कथन करना अशक्य है जो वेद वाक्यों से अगम्य है, जिससे बाहर कुछ नहीं है, भीतर कुछ नहीं है और न कुछ अन्य है ॥९॥

यस्य लिङ्गं प्रपञ्चं वा ब्रह्मैवात्मा न संशयः ।
नास्ति यस्य शरीरं वा जीवो वा भूतभौतिकः ॥ १०॥

जिसका कार्य और कारण ब्रह्म ही है ऐसा आत्मा ही है, इसमें संशय नहीं है। जिसका शरीर नहीं। अथवा जीव नहीं है तथा भूत-भौतिक नहीं है ॥१०॥

नामरूपादिकं नास्ति भोज्यं वा भोगभुक्च वा ।
सद्वाऽसद्वा स्थितिर्वापि यस्य नास्ति क्षराक्षरम् ॥ ११॥

जिसका नाम रूप भोज्य भोग अथवा भोक्ता नहीं है जो सत् असत् नहीं है अथवा जिसकी स्थिति भी नहीं है, जो क्षरातर नहीं है ॥११॥

गुणं वा विगुणं वापि सम आत्मा न संशयः ।
यस्य वाच्यं वाचकं वा श्रवणं मननं च वा ॥ १२॥

जो गुणी अथवा गुण रहित भी नहीं है, वह सम आत्मा ही है, इसमें संशय नहीं है। जिसका वाच्य-वाचक अथवा श्रवण व मनन नहीं है ॥१२॥

गुरुशिष्यादिभेदं वा देवलोकाः सुरासुराः ।
यत्र धर्ममधर्मं वा शुद्धं वाशुद्धमण्वपि ॥ १३॥

अथवा जिसमें गुरु-शिष्यादि भेद, देवलोक सुर असुर अथवा धर्म-अधर्म अथवा शुद्ध-अशुद्ध किंचित भी नहीं है ॥१३॥

यत्र कालमकालं वा निश्चयः संशयो न हि ।
यत्र मन्त्रममन्त्रं वा विद्याविद्ये न विद्यते ॥ १४॥

जिसमें काल-अकाल निश्चय या संशय नहीं है, जिसमें मन्त्र-अमन्त्र अथवा विद्या-अविद्या नहीं है ॥१४॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यं वा ईषन्मात्रं कलात्मकम् ।
अनात्मेति प्रसङ्गो वा ह्यनात्मेति मनोऽपि वा ॥ १५॥

जिसमें द्रष्टा दर्शन दृश्य किंचित सा नाम मात्र भी हो तो अनात्मत्व का प्रसंग आता है अथवा अनात्म मन ॥१५॥

अनात्मेति जगद्वापि नास्ति नास्ति निश्चिनु ।
सर्वसङ्कल्पशून्यत्वात्सर्वकार्यविवर्जनात् ॥ १६॥

अथवा अनात्म जगत् भी जहां नहीं है, कभी भी नहीं है, इस प्रकार का निश्चय करके। वह सर्व-संकल्पशून्य होने से सर्व कार्य राहत होने से ॥१६॥

केवलं ब्रह्ममात्रत्वान्नास्त्यनात्मेति निश्चिनु ।
देहत्रयविहीनत्वात्कालत्रयविवर्जनात् ॥ १७॥

केवल ब्रह्ममात्र होने से अनात्मा नहीं है, ऐसा निश्चय कर, तीनों देह रहित होने से, तीनों काल रहित होने से ॥१७॥

जीवत्रयगुणाभावात्तापत्रयविवर्जनात् ।
लोकत्रयविहीनत्वात्सर्वमात्मेति शासनात् ॥ १८॥

जीव के तीनों गुणों के अभाव से, तीनों ताप से रहित होने से, तीनों लोक से रहित होने से , इस प्रकार के उपदेश से यह अनात्म नहीं है, ऐसा निश्चय कर ॥१८॥

चित्ताभाच्चिन्तनीयं देहाभावाज्जरा न च ।
पादाभावाद्गतिर्नास्ति हस्ताभावात्क्रिया न च ॥ १९॥

उसके चित्त के अभाव से चिंतन करने योग्य है और देह के अभाव से बुढ़ापा नहीं है, पैरों के अभाव से उसकी गति नहीं है, हाथ के अभाव से क्रिया नहीं है ॥१९॥

मृत्युर्नास्ति जनाभावाद्बुद्ध्यभावात्सुखादिकम् ।
धर्मो नास्ति शुचिर्नास्ति सत्यं नास्ति भयं न च ॥ २०॥

जीव के प्राण अभाव से मृत्यु नहीं है, बुद्धि के अभाव से सुखादिक नहीं है, धर्म नहीं है, पवित्र नहीं है, सत्य नहीं है, भय नहीं है ॥२०॥

अक्षरोच्चारणं नास्ति गुरुशिष्यादि नास्त्यपि ।
एकाभावे द्वितीयं न न द्वितीये न चैकता ॥ २१॥

उस आत्मा के लिए अक्षरों का उच्चारण नहीं है, गुरु शिष्यादि भी नहीं है, एक के अभाव से दूसरा नहीं है, दूसरे के प्रभाव से एकता नहीं है ॥२१॥

सत्यत्वमस्ति चेत्किञ्चिदसत्यं न च सम्भवेत् ।
असत्यत्वं यदि भवेत्सत्यत्वं न घटिष्यति ॥ २२॥

सत्यता है तो किंचित् असत्य संभव नहीं है और यदि असत्यता है भी तो सत्यता नहीं घटती ॥२२॥

शुभं यद्यशुभं विद्धि अशुभाच्छुभमिष्यते ।
भयं यद्यभवं विद्धि अभयाद्भयमापतेत् ॥ २३॥

यदि शुभ है तो अशुभ से शुभ कहा जाता है, यदि भय है तो अभय जान, अभय से भय प्राप्त होता है ॥२३॥

बन्धत्वमपि चेन्मोक्षो बन्धाभावे क्व मोक्षता ।
मरणं यदि चेज्जन्म जन्माभावे मृतिर्न च ॥ २४॥

बन्ध है तो मोक्ष है, बन्ध के अभाव में मोक्षता नहीं है। यदि मरण है तो जन्म है, जन्म के अभाव से मरण नहीं है ॥२४॥

त्वमित्यपि भवेच्चाहं त्वं नो चेदहमेव न ।
इदं यदि तदेवास्ति तदभादिदं न च ॥ २५॥

यदि तुम हो तो मैं हूँ, तुम नहीं तो मैं भी नहीं हूँ। यह है तो वह है, वह के अभाव से यह नहीं है ॥२५॥

अस्तीति चेन्नास्ति तदा नास्ति चेदस्ति किञ्चन ।
कार्यं चेत्कारणं किञ्चित्कार्याभावे न कारणम् ॥ २६॥

यदि है भी है तो नहीं है, नहीं है तो किंचित् है। कार्य है तो कुछ कारण भी है, कार्य के प्रभाव से कारण नहीं है ॥२६॥

द्वैतं यदि तदाऽद्वैतं द्वैताभावे द्वयं न च ।

दृश्यं यदि दृगप्यस्ति दृश्याभावे दृगेन न ॥ २७॥

द्वैत है तो अद्वैत है, द्वैत के अभाव से दोनों नहीं हैं। यदि दृश्य है तो द्रष्टा भी है, दृश्य के अभाव से द्रष्टा भी नहीं है ॥२७॥

अन्तर्यदि बहिः सत्यमन्ता भावे बहिर्न च ।
पूर्णत्वमस्ति चेत्किञ्चिदपूर्णत्वं प्रसज्यते ॥ २८॥

यदि भीतर है तो बाहर भी है, भीतर के प्रभाव से बाहर नहीं है। पूर्णता है तो कुछ अपूर्णता उत्पन्न करती है ॥२८॥

तस्मादेतत्कचिन्नास्ति त्वं चाहं वा इमे इदम् ।
नास्ति दृष्टान्तिकं सत्ये नास्ति दार्ष्टान्तिकं ह्यजे ॥ २९॥

इसलिए यह तुम, वह मैं, यह ऐसा कहीं नहीं है, सत्य में दृष्टान्त नहीं है, अज में दृष्टान्त नहीं है ॥२९॥

परम्ब्रह्माहमस्मीति स्मरणस्य मनो न हि ।
ब्रह्ममात्रं जगदिदं ब्रह्ममात्रं त्वमप्यहम् ॥ ३०॥

परब्रह्म मैं हूँ, इस प्रकार स्मरण करने वाला मन नहीं है। यह जगत् ब्रह्ममात्र है, मैं और तुम भी ब्रह्ममात्र हैं ॥३०॥

चिन्मात्रं केवलं चाहं नास्त्यनात्म्येति निश्चिनु ।
इदं प्रपञ्चं नास्त्येव नोत्पन्नं नो स्थितं क्वचित् ॥ ३१॥

मैं केवल चिन्मात्र हूँ, अनात्मा नहीं हूँ। इस प्रकार निश्चय कर। यह प्रपञ्च है ही नहीं, न कहीं उत्पन्न हुआ है न कहीं स्थित है ॥३१॥

चित्तं प्रपञ्चमित्याहुर्नास्ति नास्त्येव सर्वदा ।
न प्रपञ्चं न चित्तादि नाहङ्कारो न जीवकः ॥ ३२॥

चित्त को प्रपञ्च कहते हैं वह सर्वदा नहीं है, न प्रपञ्च है, न चित्तादि है, न अहंकार है न जीव है॥३२॥

मायाकार्यादिकं नास्ति माया नास्ति भयं नहि ।
कर्ता नास्ति क्रिया नास्ति श्रवणं मननं नहि ॥ ३३॥

माया के कार्यादिक नहीं हैं, माया नहीं है और भय नहीं है, कर्ता नहीं है, क्रिया नहीं है, श्रवण मनन भी नहीं है ॥३३॥

समाधिद्वितयं नास्ति मातृमानादि नास्ति हि ।
अज्ञानं चापि नास्त्येव ह्यविवेकं कदाचन ॥ ३४॥

दो प्रकार की समाधि- सम्प्रज्ञात[3] और असम्प्रज्ञात[4] नहीं है, प्रमाण आदि भी नहीं है । अज्ञान भी नहीं है, अविवेक भी नहीं है ॥३४॥

अनुबन्धचतुष्कं न सम्बन्धत्रयमेव न ।
न गङ्गा न गया सेतुर्न भूतं नान्यदस्ति हि ॥ ३५॥

चारों अनुबन्ध अर्थात अधिकारी, विषय, प्रयोजन, संबंध और तीन संबंध भी नहीं हैं । न गङ्गा, न गया, न सेतु सेतुबन्ध रामेश्वर है, न भूत है, न अन्य ही है ॥३५ ॥

न भूमिर्न जलं नाग्निर्न वायुर्न च खं क्वचित् ।
न देवा न च दिक्पाला न वेदा न गुरुः क्वचित् ॥ ३६॥

[3] सम्प्रज्ञात समाधि- वैराग्य द्वारा योगी सांसारिक वस्तुओं (भौतिक वस्तु) के विषयों में दोष निकालकर उनसे अपने आप को अलग कर लेता है और चित्त या मन से उसकी इच्छा को त्याग देता है, जिससे मन एकाग्र होता है और समाधि को धारण करता है।

[4] अस्प्रज्ञात समाधि- इसमें व्यक्ति को कुछ आभास या ज्ञान नहीं रहता। मन जिसका ध्यान कर रहा होता है उसी में उसका मन लीन रहता है। उसके अतिरिक्त किसी दूसरी ओर उसका मन नहीं जाता।

न कहीं भूमि है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, न आकाश है, न देवता है, न दिक्पाल है, न बंद है: न गुरु है ॥३६॥

न दूरं नास्तिकं नालं न मध्यं न क्वचित्स्थितम् ।
नाद्वैतं द्वैतसत्यं वा ह्यसत्यं वा इदं न च ॥ ३७॥

न दूर है, न पास है, न कहीं अन्त है, न मध्य है, न कहीं स्थित है, न द्वैत है, न अद्वैत है, न सत्य है, न असत्य है, न यह है ॥३७॥

बन्धमोक्षादिकं नास्ति सद्वाऽसद्वा सुखादि वा ।
जातिर्नास्ति गतिर्नास्ति वर्णो नास्ति न लौकिकम् ॥ ३८॥

बन्ध और मोक्षादिक नहीं है, सत् या असत् या सुखादि या जाति नहीं है, गति नहीं है, वर्ण नहीं है, न लौकिक है ॥३८॥

सर्वं ब्रह्मेति नास्त्येव ब्रह्म इत्यपि नास्ति हि ।
चिदित्येवेति नास्त्येव चिदहम्भाषणं न हि ॥ ३९॥

सब ब्रह्म ही है। ब्रह्म नहीं है, इस प्रकार भी नहीं है, न चित् है और नहीं भी है, मैं चित् हूँ, जहां इस प्रकार भी नहीं कहा जाता ॥३६॥

अहं ब्रह्मास्मि नास्त्येव नित्यशुद्धोऽस्मि न क्वचित् ।
वाचा यदुच्यते किञ्चिन्मनसा मनुते क्वचित् ॥ ४०॥

मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा नहीं है या मैं नित्य शुद्ध हूँ, यह नहीं है। वाणी से कहा हुआ या मन से माना हुआ कुछ भी नहीं है ॥४०॥

बुद्ध्या निश्चिनुते नास्ति चित्तेन ज्ञायते नहि ।
योगी योगादिकं नास्ति सदा सर्वं सदा न च ॥ ४१॥

बुद्धि से निश्चय किया हुआ वह नहीं है, चित्त से जाना हुआ नहीं है। योगी का योगादि नहीं है, सदा सब सदा नहीं है ॥४१॥

अहोरात्रादिकं नास्ति स्नानध्यानादिकं नहि ।
भ्रान्तिरभ्रान्तिर्नास्त्येव नास्त्यनात्मेति निश्चिनु ॥ ४२॥

वह दिन-रात्रि आदि नहीं है, स्नान-ध्यान आदि भी नहीं है, भ्रान्ति नहीं है, अनात्मा नहीं है, ऐसा निश्चय कर ॥४२॥

वेदशास्त्रं पुराणं च कार्यं कारणमीश्वरः ।
लोको भूतं जनस्त्वैक्यं सर्वं मिथ्या न संशयः ॥ ४३॥

वेद, शास्त्र, पुराण, कार्य, कारण, ईश्वर, लोक, भूत, प्रजा, एकता सब मिथ्या है, इसमें संशय नहीं है ॥४३॥

बन्धो मोक्षः सुखं दुःखं ध्यानं चित्तं सुरासुराः ।
गौणं मुख्यं परं चान्यत्सर्वं मिथ्या न संशयः ॥ ४४॥

बन्ध-मोक्ष, सुख-दुःख, ध्यान-चित्त, सुर असुर, गौण-मुख्य, पर और अन्य सब मिथ्या है, इसमें संशय नहीं है ॥४४॥

वाचा वदति यत्किञ्चित्सङ्कल्पैः कल्प्यते च यत् ।
मनसा चिन्त्यते यद्यत्सर्वं मिथ्या न संशयः ॥ ४५॥

वाणी जो कुछ कहती है, संकल्पों से जो कुछ कल्पित किया जाता है, मन से जो चिन्तन किया जाता है सब मिथ्या है इसमें संशय नहीं है ॥४५॥

बुद्ध्या निश्चीयते किञ्चिच्चित्ते निश्चीयते क्वचित् ।
शास्त्रैः प्रपञ्च्यते यद्यन्नेत्रेणैव निरीक्ष्यते ॥ ४६॥

जो कुछ बुद्धि से निश्चय किया जाता है, चित्त से जो कुछ निश्चय किया जाता है, शास्त्र से जो रचा जाता है। नेत्रों से जो देखा जाता है ॥४६॥

श्रोत्राभ्यां श्रूयते यद्यदन्यत्सद्भावमेव च ।
नेत्रं श्रोत्रं गात्रमेव मिथ्येति च सुनिश्चितम् ॥ ४७॥

कानों से जो सुना जाता है, जो अन्य सद्भाव है तथा नेत्र, श्रवण और शरीर यह सभी मिथ्या हैं। यह अच्छी प्रकार से निश्चय किया जाता है ॥४७॥

इदमित्येव निर्दिष्टमयमित्येव कल्प्यते ।
त्वमहं तदिदं सोऽहमन्यत्सद्भावमेव च ॥ ४८॥

यह इस प्रकार ही कहा गया है, यह इस प्रकार ही कल्पित किया गया है। तुम, मैं, वह, यह, वह और अन्य सद्भाव ॥४८॥

यद्यत्सम्भाव्यते लोके सर्वसङ्कल्पसम्भ्रमः ।
सर्वाध्यासं सर्वगोप्यं सर्वभोगप्रभेदकम् ॥ ४९॥

जो कुछ लोक में प्रतीत होता है, सब संकल्प और भ्रम है, सब आभास है, सब गोप्य है, सब भोगों का भेद है ॥४९॥

सर्वदोषप्रभेदाच्च नास्त्यनात्मेति निश्चिनु ।
मदीयं च त्वदीयं च ममेति च तवेति च ॥ ५०॥

सब दोषों के भेद से है, अनात्मा नहीं है, ऐसा निश्चय कर, मुझ और तुम में, मेरा और तेरा ॥५०॥

मह्यं तुभ्यं मयेत्यादि तत्सर्वं वितथं भवेत् ।
रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्तु कारणम् ॥ ५१॥

मेरे लिए, तेरे लिये, मुझ से इत्यादि यह सब मिथ्या है, रक्षक विष्णु है इत्यादि ब्रह्मा सृष्टि का कारण है ॥५१॥

संहारे रुद्र इत्येवं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ।
स्नानं जपस्तपो होमः स्वाध्यायो देवपूजनम् ॥ ५२॥

और संहार रुद्र करता है, यह सब मिथ्या है। ऐसा निश्चय कर स्नान, जप, होम स्वाध्याय, देवपूजन ॥५२॥

मन्त्रं तन्त्रं च सत्सङ्गो गुणदोषविजृम्भणम् ।
अन्तःकरणसद्भाव अविद्याश्च सम्भवः ॥ ५३॥

मन्त्र, तन्त्र, सत्संग, गुण-दोष बताना, अन्तः करण का सद्भाव, अविद्या का सम्भव ॥५३॥

अनेककोटिब्रह्माण्डं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ।
सर्वदेशिकवाक्योक्तिर्येन केनापि निश्चितम् ॥ ५४॥

तथा अनेक कोटि ब्रह्माण्ड सब मिथ्या है, ऐसा निश्चय कर । सर्व उपदेशकों की वाणी का कथन जिस किसी का निश्चय किया हुआ ॥५४॥

दृश्यते जगति यद्यद्यद्यज्जगति वीक्ष्यते ।
वर्तते जगति यद्यत्सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ॥ ५५॥

जो कुछ जगत् में दिखाई देता है, जो कुछ जगत् में देखा जाता है, जो कुछ जगत् में व्यवहार होता है, सब मिथ्या है। ऐसा निश्चय करके ॥५५॥

येन केनाक्षरेणोक्तं येन केन विनिश्चितम् ।
येन केनापि गदितं येन केनापि मोदितम् ॥ ५६॥

जिस किसी अक्षर करके कहा हुआ, जिस किसी से निश्चय किया हुआ, जिस किसी से कहा हुआ, जिस किसी से विचारा हुआ ॥५६॥

येन केनापि यद्दत्तं येन केनापि यत्कृतम् ।
यत्र यत्र शुभं कर्म यत्र यत्र च दुष्कृतम् ॥ ५७॥

जिस किसी से जो दिया गया, जिस किसी से जो किया गया, जहां जहां शुभ कर्म है, जहां जहां अशुभ कर्म है॥५७॥

यद्यत्करोषि सत्येन सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ।
त्वमेव परमात्मासि त्वमेव परमो गुरुः ॥ ५८॥

जो जो तुम करते हो सचमुच सब मिथ्या है, ऐसा निश्चय करके तुम ही परमात्मा हो, तुम ही परमगुरु हो ॥५८॥

त्वमेवाकाशरूपोऽसि साक्षिहीनोऽसि सर्वदा ।
त्वमेव सर्वभावोऽसि त्वं ब्रह्मासि न संशयः ॥ ५९॥

तुम ही आकाशरूप हो , तुम ही सदैव साक्षी रहित आकाश स्वरूप हो, तुम ही सर्वभाव हो, तुम ब्रह्म संशय नहीं हो ॥५९॥

कालहीनोऽसि कालोऽसि सदा ब्रह्मासि चिद्घनः ।
सर्वतः स्वस्वरूपोऽसि चैतन्यघनवानसि ॥ ६०॥

तुम कालरहित हो, काल हो, सदा चैतन्य परब्रह्म हो, सर्व प्रकार से तुम अपना ही स्वरूप है, तुम चैतन्यधन-स्वरूप हो ॥६०॥

सत्योऽसि सिद्धोऽसि सनातनोऽसि
मुक्तोऽसि मोक्षोऽसि मुदामृतोऽसि ।

देवोऽसि शान्तोऽसि निरामयोऽसि
ब्रह्मासि पूर्णोऽसि परात्परोऽसि ॥ ६१॥

तुम सत्य हो, तुम सिद्ध हो, तुम सनातन हो, तुम मुक्त हो, तुम मोक्ष हो, तुम आनन्द अमृत हो, तुम देव हो, तुम शान्त हो, तुम निरामय हो, तुम ब्रह्म हो, तुम पूर्ण हो, तुम पर से पर हो ॥६१॥

समोऽसि सच्चापि सनातनोऽसि
सत्यादिवाक्यैः प्रतिबोधितोऽसि ।
सर्वाङ्गहीनोऽसि सदा स्थितोऽसि
ब्रह्मेन्द्ररुद्रादिविभावितोऽसि ॥ ६२॥

तुम सम हो, तुम सत्य हो, तुम सनातन हो, सत्य आदि वाक्य से जाना जाते हो, तुम सब अङ्गों से रहित हो, तुम सदा स्थित हो, तुम ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र आदि विशेष भाव वाले हो ॥६२॥

सर्वप्रपञ्चभ्रमवर्जितोऽसि
सर्वेषु भूतेषु च भासितोऽसि ।
सर्वत्र सङ्कल्पविवर्जितोऽसि
सर्वागमान्तार्थविभावितोऽसि ॥ ६३॥

तुम सर्व प्रपञ्च भ्रम से रहित हो, तुम सब भूतों में प्रकाशमान हो, तुम सर्वज्ञ संकल्प से रहित हो, तुम सर्व वेदान्तों के अर्थ से प्रकाशित हो ॥६३॥

सर्वत्र सन्तोषसुखासनोऽसि
सर्वत्र गत्यादिविवर्जितोऽसि ।
सर्वत्र लक्ष्यादिविवर्जितोऽसि
ध्यातोऽसि विष्ण्वादिसुरैरजस्रम् ॥ ६४॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! सर्वत्र सन्तोष वाले तुम सुख से बैठा हुए, सर्वत्र गति आदि से तुम रहित हो, सर्वत्र लक्ष्यादि से तुम रहित हो , तुम्हारा ही सर्वदा विष्णु आदि देवताओं द्वारा ध्यान किया जाता है ॥६४॥

चिदाकारस्वरूपोऽसि चिन्मात्रोऽसि निरङ्कुशः ।
आत्मन्येव स्थितोऽसि त्वं सर्वशून्योऽसि निर्गुणः ॥ ६५॥

तुम चैतन्याकार स्वरूप, तुम अंकुश रहित हो, तुम चिन्मात्र हो, तुम आत्मा में ही स्थित हो, तुम निर्गुण सब से शून्य हो ॥६५॥

आनन्दोऽसि परोऽसि त्वमेक एवाद्वितीयकः ।
चिद्घनानन्दरूपोऽसि परिपूर्णस्वरूपकः ॥ ६६॥

तुम आनन्द हो, तुम पर हो, तुम एक ही अद्वितीय' स्वरूप हो, तुम चैतन्यधन आनन्दस्वरूप हो, तुम परिपूर्ण स्वरूप वाले हो ॥६६॥

सदसि त्वमसि ज्ञोऽसि सोऽसि जानासि वीक्षसि ।
सच्चिदानन्दरूपोऽसि वासुदेवोऽसि वै प्रभुः ॥ ६७॥

तुम सत्य हो, तुम तुम हो, तुम ज्ञाता हो, तुम वह हो, तुम जानता हो, तुम देखते हो, तुम सच्चिदानन्दरूप हो , तुम निश्चय प्रभु वासुदेव हो ॥६७॥

अमृतोऽसि विभुश्चासि चञ्चलो ह्यचलो ह्यसि ।
सर्वोऽसि सर्वहीनोऽसि शान्ताशान्तविवर्जितः ॥ ६८॥

तुम अमृत हो, तुम विभु हो, तुम चञ्चल हो और अचल हो, तुम सर्व हो, तुम सर्वरहित हो, तुम शान्त हो, तुम अशान्त से रहित हो ॥६८॥

सत्तामात्रप्रकाशोऽसि सत्तासामान्यको ह्यसि ।
नित्यसिद्धिस्वरूपोऽसि सर्वसिद्धिविवर्जितः ॥ ६९॥

तुम सत्तामात्र प्रकाश हो, तुम ही सामान्य सत्ता हो, तुम नित्य सिद्ध स्वरूप हो, तुम समस्त सिद्धियों से रहित हो ॥६९॥

ईषन्मात्रविशून्योऽसि अणुमात्रविवर्जितः ।
अस्तित्ववर्जितोऽसि त्वं नास्तित्वादिविवर्जितः ॥ ७०॥

तुम किंचिन्मात्र विशेष शून्य हो, तुम अणुमात्र से रहित हो, तुम उत्पत्ति से रहित हो, तुम उत्पत्ति नहीं होने आदि से रहित हो ॥७०॥

लक्ष्यलक्षणहीनोऽसि निर्विकारो निरामयः ।
सर्वनादान्तरोऽसि त्वं कलाकाष्ठाविवर्जितः ॥ ७१॥

तुम लक्ष्य और लक्षण से रहित हो, तुम निर्विकार निरामय हो, तुम सब नादों के भीतर हो, तुम कला काष्ठा से रहित हो ॥७१॥

ब्रह्मविष्ण्वीशहीनोऽसि स्वस्वरूपं प्रपश्यसि ।
स्वस्वरूपावशेषोऽसि स्वानन्दाब्धौ निमज्जसि ॥ ७२॥

तुम ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर से रहित हो, तुम अपने स्वरूप को देखते हो, तुम अपने स्वरूप का शेष हो, तुम अपने आनन्द-समुद्र में मग्न हो ॥७२॥

स्वात्मराज्ये स्वमेवासि स्वयम्भावविवर्जितः ।
शिष्टपूर्णस्वरूपोऽसि स्वस्मात्किञ्चिन्न पश्यसि ॥ ७३॥

अपने आत्मराज्य में तुम स्वयं ही हो, तुम स्वयं भाव से रहित हो, तुम श्रेष्ठ पूर्णस्वरूप हो, तुम स्वयं कुछ भी नहीं देखते ॥७३॥

स्वस्वरूपान्न चलसि स्वस्वरूपेण जृम्भसि ।
स्वस्वरूपादनन्योऽसि ह्यहमेवासि निश्चिनु ॥ ७४॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! तुम अपने स्वरूप से नहीं चलते, तुम अपने स्वरूप से फैले हुए हो, तुम अपने स्वरूप से अन्य नहीं हो, निश्चय करके मैं ही तुम हो ॥७४॥

इदं प्रपञ्चं यत्किञ्चिद्यद्यज्जगति विद्यते ।
दृश्यरूपं च दृग्रूपं सर्वं शशविषाणवत् ॥ ७५॥

जो कुछ यह प्रपञ्च है, जो जो जगत् में विद्यमान है, दृश्यरूप दृष्टिरूप है, सब शशे के सींग के समान है ॥७५॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कारश्च तेजश्च लोकं भुवनमण्डलम् ॥ ७६॥

भूमि, जल, अग्नि, वायु, मन और बुद्धि, अहंकार, तेज, लोक, भुवन, मण्डल ॥७६॥

नाशो जन्म च सत्यं च पुण्यपापजयादिकम् ।
रागः कामः क्रोधलोभौ ध्यानं ध्येयं गुणं परम् ॥ ७७॥

नाश, जन्म, सत्य, पुण्य, पाप, जय पराजय आदि राग, काम क्रोध, लोभ, ध्यान, श्रेष्ठ ध्येय तथा गुण ॥७७॥

गुरुशिष्योपदेशादिरादिरन्तं शमं शुभम् ।
भूतं भव्यं वर्तमानं लक्ष्यं लक्षणमद्वयम् ॥ ७८॥

गुरु-शिष्य, उपदेश आदि, आदि-अन्त, सम शुभ, भूत, भविष्यत, वर्तमान, लक्ष्य, लक्षण, अद्वय ॥७८॥

शमो विचारः सन्तोषो भोक्तृभोज्यादिरूपकम् ।
यमाद्यष्टाङ्गयोगं च गमनागमनात्मकम् ॥ ७९॥

शम, विचार, सन्तोष, भोक्ता, भोग आदि रूप यमादि अष्टांग योग, जाना और आना ॥७९॥

आदिमध्यान्तरङ्गं च ग्राह्यं त्याज्यं हरिः शिवः ।
इन्द्रियाणि मनश्चैव अवस्थात्रितयं तथा ॥ ८०॥

आदि, मध्य और अन्तरङ्ग प्राय और त्याज्य हरि, शिव, इन्द्रियां और मन तथा तीनों अवस्थाएं ॥८०॥

चतुर्विंशतितत्त्वं च साधनानां चतुष्टयम् ।
सजातीयं विजातीयं लोका भूरादयः क्रमात् ॥ ८१॥

चौबीस तत्त्व और चार साधन सजातीय विजातीय क्रम से भू आदि लोक ॥८१॥

सर्ववर्णाश्रमाचारं मन्त्रतन्त्रादिसङ्ग्रहम् ।
विद्याविद्यादिरूपं च सर्ववेदं जडाजडम् ॥ ८२॥

सर्व वर्णाश्रम का आचार, मन्त्र तन्त्र आदियों का संग्रह, विद्या-अविद्या, सर्व वेद, जड़-अजड़ ॥८२ ॥

बन्धमोक्षविभागं च ज्ञानविज्ञानरूपकम् ।
बोधाबोधस्वरूपं वा द्वैताद्वैतादिभाषणम् ॥ ८३॥

बन्ध-मोक्ष का विभाग, ज्ञान-विज्ञान का स्वरूप अथवा बोध अबोध का स्वरूप, द्वैत-अद्वैत का कथन ॥८३॥

सर्ववेदान्तसिद्धान्तं सर्वशास्त्रार्थनिर्णयम् ।

अनेकजीवसद्भावमेकजीवादिनिर्णयम् ॥ ८४॥

सब वेदान्त का सिद्धान्त, सब शाखाओं का निर्णय, अनेक जीवों का सद्भाव, तथा एक जीव आदि का निर्णय ॥८४॥

यद्यद्ध्यायति चित्तेन यद्यत्सङ्कल्पते क्वचित् ।
बुद्ध्या निश्चीयते यद्यद्गुरुणा संशृणोति यत् ॥ ८५॥

जो जो चित्त से ध्यान किया जाता है, जो जो संकल्प किया जाता है, जो कुछ भी बुद्धि से निश्चय किया जाता है, जो कुछ भी गुरु से सुना जाता है ॥८५॥

यद्यद्वाचा व्याकरोति यद्यदाचार्यभाषणम् ।
यद्यत्स्वरेन्द्रियैर्भाव्यं यद्यन्मीमांसते पृथक् ॥ ८६॥

जो जो वाणी कहती है, जो जो आचार्य का कथन है, जो जो इद्रियों से प्रतीत होता है, जो जो पृथक् विचारा जाता है।॥८६॥

यद्यन्न्यायेन निर्णीतं महद्भिर्वेदपारगैः ।
शिवः क्षरति लोकान्वै विष्णुः पाति जगत्त्रयम् ॥ ८७॥

जो कुछ महान् वेद के पारदर्शियों से न्याय द्वारा निश्चय किया गया है, शिव लोकों का संहार करता है, विष्णु तीन जगत् को पालता है ॥८७॥

ब्रह्मा सृजति लोकान्वै एवमादिक्रियादिकम् ।
यद्यदस्ति पुराणेषु यद्यद्वेदेषु निर्णयम् ॥ ८८॥

ब्रह्मा लोकों को उत्पन्न करता है, इस प्रकार आदि की क्रिया आदि जो भी पुराणों में है, जो भी वेदों में निर्णय है ॥८८॥

सर्वोपनिषदां भावं सर्वं शशविषाणवत् ।
देहोऽहमिति सङ्कल्पं तदन्तःकरणं स्मृतम् ॥ ८९॥

समस्त उपनिषद् का भाव सब शंशे के सींगों के समान है । 'मैं देह हूँ' 'इस प्रकार का संकल्प अन्तःकरण का माना हुआ है। ॥८९॥

देहोऽहमिति सङ्कल्पो महत्संसार उच्यते ।
देहोऽहमिति सङ्कल्पस्तद्बन्धमिति चोच्यते ॥ ९०॥

'मैं देह हूँ इस प्रकार का संकल्प महान् संसार कहलाता है । 'मैं देह हूँ' यह संकल्प ही बन्ध कहलाता है ॥९०॥

देहोऽहमिति सङ्कल्पस्तद्दुःखमिति चोच्यते ।
देहोऽहमिति यद्भानं तदेव नरकं स्मृतम् ॥ ९१॥

'मैं देह हूँ' इस प्रकार का संकल्प दुःख कहलाता है । 'मैं देह हूँ' इस प्रकार जो भी आभास है उसको नरक समझे ॥९१॥

देहोऽहमिति सङ्कल्पो जगत्सर्वमितीर्यते ।
देहोऽहमिति सङ्कल्पो हृदयग्रन्थिरीरितिः ॥ ९२॥

'मैं देह हूँ। इस प्रकार का संकल्प सब जगत् कहलाता है । 'मैं देह हूँ' इस प्रकार का संकल्प हृदय ग्रन्थि कहलाता है। ॥९२॥

देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेवाज्ञानमुच्यते ।
देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदसद्भावमेव च ॥ ९३॥

मैं 'देह हूँ' इस प्रकार का ज्ञान अज्ञान कहलाता है । 'मैं देह हूँ। इस प्रकार का ज्ञान ही असत्य भावना है। ॥९३॥

देहोऽहमिति या बुद्धिः सा चाविद्येति भण्यते ।
देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेव द्वैतमुच्यते ॥ ९४॥

हे स्वामी कार्तिकेय ! 'मैं देह हूँ" इस प्रकार की बुद्धि अविद्या कहलाती है । 'मैं देह हूँ। इस प्रकार का ज्ञान ही द्वैत कहलाता है ॥९४॥

देहोऽहमिति सङ्कल्पः सत्यजीवः स एव हि ।
देहोऽहमिति यज्ज्ञानं परिच्छिन्नमितीरितम् ॥ ९५॥

'मैं देह हूँ' इस प्रकार का संकल्प ही सच्चा जीव है। 'मैं देह हूँ' इस प्रकार का ज्ञान ही परिच्छिन्न कहा गया है ॥९५॥

देहोऽहमिति सङ्कल्पो महापापमिति स्फुटम् ।
देहोऽहमिति या बुद्धिस्तृष्णा दोषामयः किल ॥ ९६॥

'मैं देह हूँ' इस प्रकार का संकल्प प्रत्यक्ष महा पाप है। 'मैं देह हूँ इस प्रकार की बुद्धि ही प्रसिद्ध तृष्णा दोषरूप रोग है ॥९६॥

यत्किञ्चिदपि सङ्कल्पस्तापत्रयमितीरितम् ।
कामं क्रोधं बन्धनं सर्वदुःखं
विश्वं दोषं कालनानास्वरूपम् ।
यत्किञ्चेदं सर्वसङ्कल्पजालं
तत्किञ्चेदं मानसं सोम विद्धि ॥ ९७॥

जो कुछ भी संकल्प है वह तीनों ताप कहा गया है। काम, क्रोध, बन्धन है, सर्व दुःख है, सब दोषरूप है, काल करके नाना स्वरूप धारण करते हैं। यह जो कुछ है सब संकल्प का जाल है ! हे सोम्य! ऐसे इस किंचित् को मन का विचार जानो ॥९७॥

मन एव जगत्सर्वं मन एव महारिपुः ।
मन एव हि संसारो मन एव जगत्त्रयम् ॥ ९८॥

मन ही समस्त जगत् है, मन ही महा शत्रु है, मन ही संसार है, मन ही तीनों जगत् है ॥९८॥

मन एव महद्दुःखं मन एव जरादिकम् ।
मन एव हि कालश्च मन एव मलं तथा ॥ ९९॥

मन ही महा दुःख है, मन ही बुढ़ापा आदि है, मन ही काल है और मन ही मल है ॥९९॥

मन एव हि सङ्कल्पो मन एव हि जीवकः ।
मन एव हि चित्तं च मनोऽहङ्कार एव च ॥ १००॥

मन ही संकल्प है मन ही जीव है, मन ही चित्त है, मन ही अहंकार है ॥१००॥

मन एव महद्बन्धं मनोऽन्तःकरणं च तत् ।
मन एव हि भूमिश्च मन एव हि तोयकम् ॥ १०१॥

मन ही महा बन्ध है, मन ही अन्तःकरण है, मन ही पृथ्वी है, मन ही जल है ॥१०१॥

मन एव हि तेजश्च मन एव मरुन्महान् ।
मन एव हि चाकाशं मन एव हि शब्दकम् ॥ १०२॥

मन ही तेज है, मन ही महान् वायु है, मन ही आकाश है, मन ही शब्दरूप है ॥१०२॥

स्पर्शं रूपं रसं गन्धं कोशाः पञ्च मनोभवाः ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि मनोमयरितीरितम् ॥ १०३॥

स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पांचों कोष मन से हुए हैं । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि मनोमय कहे जाते हैं ॥१०३॥

दिक्पाला वसवो रुद्रा आदित्याश्च मनोमयाः ।
दृश्यं जडं द्वन्द्वजातमज्ञानं मानसं स्मृतम् ॥ १०४॥

दिक्पाल, वसु, रुद्र आदित्य, मनोमय हैं, दृश्य, जड़, द्वन्द्व, जन्म, अज्ञान मन के समझे गए है ॥१०४॥

सङ्कल्पमेव यत्किञ्चित्तत्तन्नास्तीति निश्चिनु ।
नास्ति नास्ति जगत्सर्वं गुरुशिष्यादिकं नहीत्युपनिषत् ॥ १०५॥

जो कुछ संकल्प है वह नहीं है, ऐसा निश्चय कर सब जगत् नहीं है, नहीं है, गुरु-शिष्यादिक भी नहीं हैं, यह सिद्धान्त है निदाय ॥१०५॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५॥

॥ श्री हरि ॥

# ॥ तेजोबिन्दु उपनिषद॥

## षष्ठ अध्याय: छठा अध्याय

ऋभुः ॥ सर्वं सच्चिन्मयं विद्धि सर्वं सच्चिन्मयं ततम् ।
सच्चिदानन्दमद्वैतं सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥ १॥

हे निदाघ ! सर्व सत् चित् मय जानो, सब सत् चित् मय व्यापक है, सत् चित् आनन्द अद्वैत है, सत चित् आनन्द अद्वय है ॥१॥

सच्चिदानन्दमात्रं हि सच्चिदानन्दमन्यकम् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं सच्चिदानन्दमेव खम् ॥ २॥

सत् चित् आनन्द मात्र है, सत् चित् आनन्द अन्य रूप है, सत् चित् आनन्द रूप मैं हूँ, सत् चित् आनन्द आकाश है ॥२॥

सच्चिदानन्दमेव त्वं सच्चिदानन्दकोऽस्यहम् ।
मनोबुद्धिरहङ्कारचित्तसङ्घातका अमी ॥ ३॥

सत् चित् आनन्द ही तुम है, सत् चित् आनन्द रूप मैं हूँ, यह मन यह बुद्धि, अहंकार चित्त समूह ॥३॥

न त्वं नाहं न चान्यद्वा सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।
न वाक्यं न पदं वेदं नाक्षरं न जडं क्वचित् ॥ ४॥

हे राजन् ! यह न तुम है, न मैं हूँ, न अन्य ही कोई है। सब केवल ब्रह्म ही है, न वाक्य, न पद, न वेद, न अक्षर, न जड़ कहीं है ॥४॥

न मध्यं नादि नान्तं वा न सत्यं न निबन्धजम् ।
न दुःखं न सुखं भावं न माया प्रकृतिस्तथा ॥ ५॥

हे राजन् ! न मध्य, न आदि, न अन्त, न सत्य, न बन्ध, न दुःख, न सुख, न भाव, न माया, न प्रकृति ॥५॥

न देहं न मुखं घ्राणं न जिह्वा न च तालुनी ।
न दन्तोष्ठौ ललाटं च निश्वासोच्छ्वास एव च ॥ ६॥

हे राजन् ! न देह है, न मुख है, न घ्राण है, न जिह्वा है, न तालु है, न दांत हैं, न होठ हैं, न मस्तक है, न श्वास है, न उच्छवास है ॥६॥

न स्वेदमस्थि मांसं च न रक्तं न च मूत्रकम् ।
न दूरं नान्तिकं नाङ्गं नोदरं न किरीटकम् ॥ ७॥

न पसीना है, न हड्डी है, न मांस है, न रक्त है, न मूत्र है, न दूर है, न पास है, न अंग है, न उदर है, न मुकुट है ॥७॥

न हस्तपादचलनं न शास्त्रं न च शासनम् ।
न वेत्ता वेदनं वेद्यं न जाग्रत्स्वप्नसुप्तयः ॥ ८॥

न हाथ-पैर का चलना है, न शास्त्र है, न उप देश है, न जानने वाला है, न ज्ञान है, न ज्ञेय है, न जाग्रत है, स्वप्न है, न सुषुप्ति है ॥८॥

तुर्यातीतं न मे किञ्चित्सर्वं सच्चिन्मयं ततम् ।
नाध्यात्मिकं नाधिभूतं नाधिदैवं न मायिकम् ॥ ९॥

हे निदाघ ! मुझमें तुर्यातीत किंचित नहीं है, सर्व सचित् मय व्यापक है। न आध्यात्मिक है, न अधिभूत है, न अधिदैव है, न मायिक है ॥९॥

न विश्वतैजसः प्राज्ञो विराट्सूत्रात्मकेश्वरः ।
न गमागमचेष्टा च न नष्टं न प्रयोजनम् ॥ १०॥

न विश्व तैजस प्राज्ञ विराट् सूत्रात्मा ईश्वर है। हे राजन् ! न आगे जाने की चेष्टा है, न नष्ट है, न प्रयोजन है ॥१०॥

त्याज्यं ग्राह्यं न दूष्यं वा ह्यमेध्यामेध्यकं तथा ।
न पीनं न कृशं क्लेदं न कालं देशभाषणम् ॥ ११॥

त्यागने योग्य, ग्रहण करने योग्य अथवा दूषित नहीं है, न पवित्र है, न अपवित्र है, न मोटा है, न पतला है, न भीगा हुआ है, न काल है, न देश का कथन है ॥११॥

न सर्वं न भयं द्वैतं न वृक्षतृणपर्वताः ।
न ध्यानं योगसंसिद्धिर्न ब्रह्मवैश्यक्षत्रकम् ॥ १२॥

न सर्व है, न भय है, न द्वैत है, न वृक्ष, तृण, पर्वत है, न ध्यान है, न योग है, न संसिद्धि है, न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है ॥१२॥

न पक्षी न मृगो नाङ्गी न लोभो मोह एव च ।
न मदो न च मात्सर्यं कामक्रोधादयस्तथा ॥ १३॥

न पक्षी है, न मृग है, न अंगी है, न लोभ है, न मोह ही है। न मद है, न मत्सरता है, न काम है, न क्रोध आदि है ॥१३॥

न स्त्रीशूद्रबिडालादि भक्ष्यभोज्यादिकं च यत् ।
न प्रौढहीनो नास्तिक्यं न वार्तावसरोऽति हि ॥ १४॥

स्त्री, शूद्र, बिल्ली आदि और भक्ष्य, भोज्य आदि नहीं हैं। न प्रौढ़ है, न आस्तिक्य है, न वार्ता ही का अवसर है ॥१४॥

न लौकिको न लोको वा न व्यापारो न मूढता ।
न भोक्ता भोजनं भोज्यं न पात्रं पानपेयकम् ॥ १५॥

न लौकिक है, न लोक है, न व्यापार है, न मूढ़ता है, न भोक्ता है, न भोजन है, न भोज्य है, न पात्र है, न पान है, न पीने योग्य है ॥१५॥

न शत्रुमित्रपुत्रादिर्न माता न पिता स्वसा ।
न जन्म न मृतिर्वृद्धिर्न देहोऽहमिति भ्रमः ॥ १६॥

न शत्र, मित्र, पुत्र आदि हैं, न माता, पिता, बहिन आदि हैं। न जन्म है, न मृत्यु. है, न वृद्धि है, 'मैं देह हूँ' यह भ्रान्ति है ॥१६॥

न शून्यं नापि चाशून्यं नान्तःकरणसंसृतिः ।
न रात्रिर्न दिवा नक्तं न ब्रह्मा न हरिः शिवः ॥ १७॥

न शून्य है, न अशून्य है, न अन्तःकरण है, न संसार है, न रात्रि है, न दिन है, न ब्रह्मा है, न हरि है, न शिव है ॥१७॥

न वारपक्षमासादि वत्सरं न च चञ्चलम् ।
न ब्रह्मलोको वैकुण्ठो न कैलासो न चान्यकः ॥ १८॥

न वार, पक्ष, मास आदि है, न वर्ष है, न स्थूल है, न ब्रह्मलोक है, न वैकुण्ठ लोक है, न कैलाश है, न अन्य लोक है ॥१८॥

न स्वर्गो न च देवेन्द्रो नाग्निलोको न चाग्निकः ।
न यमो यमलोको वा न लोका लोकपालकाः ॥ १९॥

न स्वर्ग है, न देवराज इन्द्र है, न अग्नि है , न श्लोक है, न अग्निहोत्री है, न यम है, न यमलोक है, न लोक है, न लोकपाल है ॥१९॥

न भूर्भुवःस्वस्त्रैलोक्यं न पातालं न भूतलम् ।
नाविद्या न च विद्या च न माया प्रकृतिर्जडा ॥ २०॥

न भूः भुवः और स्वः ये तीनों लोक हैं, न पाताल है, न भूतल है, न अविद्या है, न विद्या है, न माया है, न जड़ प्रकृति है ॥२०॥

न स्थिरं क्षणिकं नाशं न गतिर्न च धावनम् ।
न ध्यातव्यं न मे ध्यानं न मन्त्रो न जपः क्वचित् ॥ २१॥

हे राजन् ! न स्थिर है, न क्षणिक है, न नाश है, न गति है और न दौड़ना है। न मुक्त है, न ध्येय है, न ध्यान है, न मन्त्र है, न कहीं जप है ॥२१॥

न पदार्था न पूजार्हं नाभिषेको न चार्चनम् ।
न पुष्पं न फलं पत्रं गन्धपुष्पादिधूपकम् ॥ २२॥

न पदार्थ है, न पूजने योग्य है, न अभिषेक है, न पूजा है, न पुष्प है, न फल है, न पत्र, गन्ध, पुष्प आदि धूप है ॥२२॥

न स्तोत्रं न नमस्कारो न प्रदक्षिणमण्वपि ।
न प्रार्थना पृथग्भावो न हविर्नाग्निवन्दनम् ॥ २३॥

न स्तोत्र है, न नमस्कार है, न थोड़ी सी भी प्रदक्षिणा है, न प्रार्थना है, न पृथक भाव है, न हवि है, न अग्नि की वन्दना है ॥२३॥

न होमो न च कर्माणि न दुर्वाक्यं सुभाषणम् ।
न गायत्री न वा सन्धिर्न मनस्यं न दुःस्थितिः ॥ २४॥

न होम है, न कर्म है, न दुर्वचन है, न सुन्दर भाषण है, न गायत्री है, न संधि है, न ध्यान है, न मन की दुष्ट स्थिति है ॥२४॥

न दुराशा न दुष्टात्मा न चाण्डालो न पौल्कसः ।
न दुःसहं दुरालापं न किरातो न कैतवम् ॥ २५॥

न दुराशा है, न दुष्टात्मा है, न चाण्डाल है, न पौलकस अर्थात नीच जाति विशेष है, न दुःसह है, न निन्दा है, न किरात है, न कैतव अर्थात भीजा की जाति है ॥२५॥

न पक्षपातं न पक्षं वा न विभूषणतस्करौ ।
न च दम्भो दाम्भिको वा न हीनो नाधिको नरः ॥ २६॥

न पक्षपात है, न पक्ष है, न आभूषण है, न चोर है, न दम्भ है, न दम्भ करने वाला है, न नीच है, न श्रेष्ठ है ॥२६॥

नैकं द्वयं त्रयं तुर्यं न महत्वं न चाल्पता ।
न पूर्णं न परिच्छिन्नं न काशी न व्रतं तपः ॥ २७॥

एक, दो, तीन, चार नहीं है, न महानता है, न अल्लपना है, न पूर्ण है, न परिच्छिन्न है, न काशी है, न वा है,न तप है ॥२७॥

न गोत्रं न कुलं सूत्रं न विभुत्वं न शून्यता ।
न स्त्री न योषिन्नो वृद्धा न कन्या न वितन्तुता ॥ २८॥

न गोत्र है, न कुल है, न सूत्र है, ने व्यापकता है न शून्यात्मा है, न स्त्री है, न युवती है, न वृद्धा है, न कन्या है, न सूक्ष्मतन्वीपना है ॥२८॥

न सूतकं न जातं वा नान्तर्मुखसुविभ्रमः ।
न महावाक्यमैक्यं वा नाणिमादिविभूतयः ॥ २९॥

न सूतक अर्थात उत्पत्ति का दोष है, न जन्म है, न अन्तर्मुख है, न भ्रम है, न महावाक्य है, न एकता है, न  अणिमा आदि आठ सिद्धियां[5] हैं ॥२९॥

सर्वचैतन्यमात्रत्वात्सर्वदोषः सदा न हि ।
सर्वं सन्मात्ररूपत्वात्सच्चिदानन्दमात्रकम् ॥ ३०॥

सर्व चैतन्य मात्र होने से सदा सर्व दोष नहीं है, सर्व सत्य मात्र रूप होने से सच्चिदानंद मात्र है ॥३०॥

ब्रह्मैव सर्वं नान्योऽस्ति तदहं तदहं तथा ।
तदेवाहं तदेवाहं ब्रह्मैवाहं सनातनम् ॥ ३१॥

[5] अणिमा , महिमा, लघिमा, गरिमा तथा प्राप्ति प्राकाम्य इशित्व और वशित्व ये सिद्धियां "अष्टसिद्धि" कहलाती हैं।

हे राजन् ! इस ब्रह्माभ्यास को बारम्बार कर, विचार कर, सब ब्रह्म ही है, अन्य नहीं है। इसी प्रकार वह मैं हूँ, वह मैं हूँ, वह ही में हूँ, वह ही मैं हूँ,, मैं सनातन ब्रह्म ही हूँ ॥३१॥

ब्रह्मैवाहं न संसारी ब्रह्मैवाहं न मे मनः ।
ब्रह्मैवाहं न मे बुद्धिर्ब्रह्मैवाहं न चेन्द्रियः ॥ ३२॥

'मैं ब्रह्म ही हूँ' संसारी जीव नहीं हूँ। मैं ब्रह्म ही हूँ, मुझ से मन नहीं है । 'मैं ब्रह्म ही हूँ' मुझ से बुद्धि नहीं है । 'मैं ब्रह्म ही हूँ' इन्द्रियां नहीं हूँ ॥३२॥

ब्रह्मैवाहं न देहोऽहं ब्रह्मैवाहं न गोचरः ।
ब्रह्मैवाहं न जीवोऽहं ब्रह्मैवाहं न भेदभूः ॥ ३३॥

मैं ब्रह्म ही हूँ देह नहीं हूँ। 'मैं ब्रह्म ही हूँ, विषय नहीं हूँ। 'मैं ब्रह्म ही हूँ, जीव अर्थात कर्ता भोक्ता नहीं हूँ । 'मैं ब्रह्म ही हूँ' भेद वाला नहीं हूँ ॥३३॥

ब्रह्मैवाहं जडो नाहमहं ब्रह्म न मे मृतिः ।
ब्रह्मैवाहं न च प्राणो ब्रह्मैवाहं परात्परः ॥ ३४॥

'मैं ब्रह्म ही हूँ' जड़ नहीं हूँ। मैं ब्रह्म ही हूँ, मुझ में मरण नहीं है। मैं ब्रह्म ही हूँ' प्राण नहीं हूँ। 'मैं पर से पर ब्रह्म ही हूँ ॥३४॥

इदं ब्रह्म परं ब्रह्म सत्यं ब्रह्म प्रभुर्हि सः ।
कालो ब्रह्म कला ब्रह्म सुखं ब्रह्म स्वयम्प्रभम् ॥ ३५॥

यह ब्रह्म है, परब्रह्म है, सत्य ब्रह्म है, वह प्रभु है, काल ब्रह्म है, कला ब्रह्म है, सुख ब्रह्म है, स्वयं प्रकाश है ॥३५॥

एकं ब्रह्म द्वयं ब्रह्म मोहो ब्रह्म शमादिकम् ।
दोषो ब्रह्म गुणो ब्रह्म दमः शान्तं विभुः प्रभुः ॥ ३६॥

एक ब्रह्म है, द्वय ब्रह्म है, मोह ब्रह्म है, शमादिक ब्रह्म है, दोष ब्रह्म है, गुण ब्रह्म है, दम ब्रह्म है, शान्ति विभु प्रभु ब्रह्म है ॥३६॥

लोको ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म शिष्यो ब्रह्म सदाशिवः ।
पूर्वं ब्रह्म परं ब्रह्म शुद्धं ब्रह्म शुभाशुभम् ॥ ३७॥

लोक ब्रह्म है, गुण ब्रह्म है, शिष्य ब्रह्म है, सदा शिव ब्रह्म है, पूर्व ब्रह्म है, पर ब्रह्म है, शुद्ध ब्रह्म है, शुभाशुभ ब्रह्म है ॥३७॥

जीव एव सदा ब्रह्म सच्चिदानन्दमस्म्यहम् ।
सर्वं ब्रह्ममयं प्रोक्तं सर्वं ब्रह्ममयं जगत् ॥ ३८॥

जीव ही सदा ब्रह्म है, मैं सच्चिदानन्द हूँ, सर्व ब्रह्ममय कहा है, सर्व जगत् ब्रह्ममय है ॥३८॥

स्वयं ब्रह्म न सन्देहः स्वस्मादन्यन्न किञ्चन ।
सर्वमात्मैव शुद्धात्मा सर्वं चिन्मात्रमद्वयम् ॥ ३९॥

सन्देहरहित आप ही ब्रह्म है, अपने से अन्य कुछ नहीं है, सब आत्मा ही है, शुद्ध आत्मा है, सब चिन्मात्र

आदि अद्वितीय है ॥३९॥

नित्यनिर्मलरूपात्मा ह्यात्मनोऽन्यन्न किञ्चन ।
अणुमात्रलसद्रूपमणुमात्रमिदं जगत् ॥ ४०॥

आत्मा नित्य निर्मल रूप है, आत्मा से अन्य कुछ नहीं है, अणुमात्र शुद्ध रूप है, अणुमात्र यह जगत् है ॥४०॥

अणुमात्रं शरीरं वा ह्यणुमात्रमसत्यकम् ।
अणुमात्रमचिन्त्यं वा चिन्त्यं वा ह्यणुमात्रकम् ॥ ४१॥

हे राजन्! पुनः अभ्यास कर जिससे मनोवास हो। अणुमात्र शरीर है, अणुमात्र सत्य है, अणुमात्र अचिन्त्य है अथवा अणुमात्र चिन्त्य है ॥४१॥

ब्रह्मैव सर्वं चिन्मात्रं ब्रह्ममात्रं जगत्त्रयम् ।
आनन्दं परमानन्दमन्यत्किञ्चिन्न किञ्चन ॥ ४२॥

ब्रह्म ही सब चिन्मात्र है, ब्रह्ममात्र तीनों जगत हैं, आनन्द परमानन्द है, अन्य कुछ नहीं है ॥४२॥

चैतन्यमात्रमोङ्कारं ब्रह्मैव सकलं स्वयम् ।
अहमेव जगत्सर्वमहमेव परं पदम् ॥ ४३॥

चैतन्यमात्र ओंकार है, ब्रह्म ही सर्व आप है, मैं ही सब जगत् हूँ, मैं ही परम पद हूँ ॥४३॥

अहमेव गुणातीत अहमेव परात्परः ।
अहमेव परं ब्रह्म अहमेव गुरोर्गुरुः ॥ ४४॥

मैं ही गुणातीत हूँ, मैं ही पर से पर हूँ, मैं ही पर ब्रह्म हूँ, मैं ही गुरुओं का गुरु हूँ ॥४४॥

अहमेवाखिलाधार अहमेव सुखात्सुखम् ।
आत्मनोऽन्यज्जगन्नास्ति आत्मनोऽन्यत्सुखं न च ॥ ४५॥

मैं ही सब का आधार हूँ, मैं ही सुख का सुख हूँ, आत्मा से भिन्न जगत् नहीं है, आत्मा से भिन्न सुख भी नहीं है ॥४५॥

आत्मनोऽन्या गतिर्नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् ।
आत्मनोऽन्यन्नहि क्वापि आत्मनोऽन्यत्तृणं नहि ॥ ४६॥

आत्मा से भिन्न कोई गति नहीं है, सब जगत् आत्ममय है, आत्मा से भिन्न कहीं नहीं है, आत्मा से भिन्न तृण भी नहीं है ॥४६॥

आत्मनोऽन्यत्तुषं नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् ।
ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्ममात्रमसन्न हि ॥ ४७॥

आत्मा से भिन्न तुष अर्थात भूसा भी नहीं है, सब जगत् आत्ममय है, ब्रह्ममात्र यह सब है, ब्रह्ममात्र असत् नहीं ॥४७॥

ब्रह्ममात्रं श्रुतं सर्वं स्वयं ब्रह्मैव केवलम् ।
ब्रह्ममात्रं वृतं सर्वं ब्रह्ममात्रं रसं सुखम् ॥ ४८॥

सब सुना हुआ ब्रह्ममात्र है, ब्रह्म ही केवल आप है, ब्रह्ममात्र से सब वृत है, ब्रह्ममात्र रस और सुख है ॥४८॥

ब्रह्ममात्रं चिदाकाशं सच्चिदानन्दमव्ययम् ।
ब्रह्मणोऽन्यतरन्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यज्जगन्न च ॥ ४९॥

ब्रह्ममात्र चिदाकाश, सच्चिदानन्द, अद्वितीय है। ब्रह्म के सिवाय अन्य नहीं है, ब्रह्म से भिन्न जगत नहीं है ॥४९॥

ब्रह्मणोऽन्यदह नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्फलं नहि ।
ब्रह्मणोऽन्यत्तृणं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्पदं नहि ॥ ५०॥

मैं ब्रह्म से भिन्न नहीं हूँ, ब्रह्म के सिवाय फल नहीं है, ब्रह्म से भिन्न तृण नहीं है, ब्रह्म से भिन्न पद नहीं है ॥५०॥

ब्रह्मणोऽन्यद्गुरुर्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यमसद्वपुः ।
ब्रह्मणोऽन्यन्न चाहन्ता त्वत्तेदन्ते नहि क्वचित् ॥ ५१॥
हे निदाघ ! ब्रह्म से भिन्न गुरु नहीं है, ब्रह्म बिना शरीर असत्य है, ब्रह्म से अन्य अहंता, तुझ पना, यह, वह कहीं नहीं है ॥५१॥

स्वयं ब्रह्मात्मकं विद्धि स्वस्मादन्यन्न किञ्चन ।

यत्किञ्चिद्दृश्यते लोके यत्किञ्चिद्भाष्यते जनैः ॥ ५२॥

हे राजन्! अपने को ब्रह्म-स्वरूप जान, अपने से अन्य कुछ नहीं है, जो कुछ जगत् में देखा जाता है, जो कुछ लोगों से कहा जाता है ॥५२॥

यत्किञ्चिद्भुज्यते क्वापि तत्सर्वमसदेव हि ।
कर्तृभेदं क्रियाभेदं गुणभेदं रसादिकम् ॥ ५३॥

जो कुछ कहीं भी भोगा जाता है वह सब असत्य है । कर्ता-भेद, क्रिया-भेद, गुण-भेद रसादिक ॥५३॥

लिङ्गभेदमिदं सर्वमसदेव सदा सुखम् ।
कालभेदं देशभेदं वस्तुभेदं जयाजयम् ॥ ५४॥

यह सब लिंग -भेद असत्य ही है, सदा सुख, काल-भेद, देश-भेद, वस्तु-भेद, जीत-हार ॥५४॥

यद्यद्भेदं च तत्सर्वमसदेव हि केवलम् ।
असदन्तःकरणकमसदेवेन्द्रियादिकम् ॥ ५५॥

जो जो भेद हैं वे केवल असत्य ही हैं, अन्त: करण असत्य है, इन्द्रियादिक असत्य हैं ॥५५॥

असत्प्राणादिकं सर्वं सङ्घातमसदात्मकम् ।
असत्यं पञ्चकोशाख्यमसत्यं पञ्च देवताः ॥ ५६॥

प्राणादिक सब असत्य हैं, शरीर सब असत्य है, पांच कोश असत्य हैं, देवता असत्य हैं ॥५६॥

असत्यं षड्विकारादि असत्यमरिवर्गकम् ।
असत्यं षड्ऋतुश्चैव असत्यं षड्रसस्तथा ॥ ५७॥

छह विकारादि असत्य हैं, शत्रुवर्ग असत्य है, छह ऋतुएं असत्य हैं और छह रस असत्य हैं ॥५७॥

सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् ।
आत्मैवाहं परं सत्यं नान्याः संसारदृष्टयः ॥ ५८॥

मैं सच्चिदानन्द मात्र हूँ, यह जगत् कभी उत्पन्न नहीं हुआ है, मैं परम सत्य आत्मा ही हूँ, अन्य संसार दृष्टि नहीं हैं ॥५८॥

सत्यमानन्दरूपोऽहं चिद्घनानन्दविग्रहः ।
अहमेव परानन्द अहमेव परात्परः ॥ ५९॥

मैं सत्य आनन्द रूप हूँ, चैतन्यधन आनन्द स्वरूप हूँ, मैं ही परमानन्द हूँ, मैं ही पर से परात्पर हूँ ॥५९॥

ज्ञानाकारमिदं सर्वं ज्ञानानन्दोऽहमद्वयः ।
सर्वप्रकाशरूपोऽहं सर्वाभावस्वरूपकम् ॥ ६०॥

यह ज्ञानाकार है, मैं अद्वितीय ज्ञान आनन्द रूप हूँ, मैं सबका प्रकाशरूप हूँ, मैं सर्व अभावरूप हूँ ॥६०॥

अहमेव सदा भामीत्येवं रूपं कुतोऽप्यसत् ।
त्वमित्येवं परं ब्रह्म चिन्मयानन्दरूपवान् ॥ ६१॥

मैं ही सदा आभासित होता हूँ, कहां असत्य है, तुम ही चिन्मात्र आनन्दरूप वाला परब्रह्म हो ॥६१॥

चिदाकारं चिदाकाशं चिदेव परमं सुखम् ।
आत्मैवाहमसन्नाहं कूटस्थोऽहं गुरुः परः ॥ ६२॥

चैतन्य आकार है, चैतन्य आकाश है, चैतन्य ही परम सुख है, मैं आत्मा ही हूँ, असत् नहीं हूँ, मैं कूटस्थ हूँ, श्रेष्ठगुरु हूँ ॥६२॥

सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् ।
कालो नास्ति जगन्नास्ति मायाप्रकृतिरेव न ॥ ६३॥

मैं सच्चिदानन्द मात्र हूँ, यह जगत् उत्पन्न ही नहीं हुआ है, काल नहीं है, जगत् नहीं है, माया प्रकृति भी नहीं है ॥६३॥

अहमेव हरिः साक्षादहमेव सदाशिवः ।
शुद्धचैतन्यभावोऽहं शुद्धसत्त्वानुभावनः ॥ ६४॥

मैं ही साक्षात् हरि हूँ, मैं ही सदा शिव हूँ, मैं ही शुद्ध सत्य को प्रकाश करने वाला हूँ, मैं शुद्ध, चैतन्य भाव रूप हूँ ॥६४॥

अद्वयानन्दमात्रोऽहं चिद्घनैकरसोऽस्म्यहम् ।
सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ६५॥

मैं अद्वितीय आनन्द मात्र हूँ, मैं चैतन्यधन एक रस हूँ, सब सदा ब्रह्म ही है, सब केवल ब्रह्म ही है ॥६५॥

सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव चेतनम् ।
सर्वान्तर्यामिरूपोऽहं सर्वसाक्षित्वलक्षणः ॥ ६६॥

सब सदा ब्रह्म ही है, सब चैतन्य ब्रह्म ही है, मैं सबका अन्तर्यामी रूप हूँ, सर्व साक्षीपने के लक्षण वाला मैं हूँ ॥६६॥

परमात्मा परं ज्योतिः परं धाम परा गतिः ।
सर्ववेदान्तसारोऽहं सर्वशास्त्रसुनिश्चितः ॥ ६७॥

परमात्मा परम ज्योति, परम धाम, परम गति, सब वेदान्त का सार हूँ. सब शास्त्रों से निश्चित किया गया है । ॥६७॥

योगानन्दस्वरूपोऽहं मुख्यानन्दमहोदयः ।
सर्वज्ञानप्रकाशोऽस्मि मुख्यविज्ञानविग्रहः ॥ ६८॥

मैं योगानन्द स्वरूप हूँ, मैं मुख्य आनंद महोदय हूँ, मैं सब ज्ञान का प्रकाश हूँ, मैं मुख्य विज्ञान स्वरूप हूँ ॥६८॥

तुर्यातुर्यप्रकाशोऽस्मि तुर्यातुर्यादिवर्जितः ।
चिदक्षोऽन् सत्योऽहं वासुदवोऽजररोऽमरः ॥ ६९॥

मैं तुर्य-अतुर्य का प्रकाश हूँ, मैं तुर्य-अतुय आदि से रहित हूँ, मैं चैतन्य अक्षर हूँ, मैं सत्य हूँ, मैं वासुदेव अजर-अमर हूँ ॥६९॥

अहं ब्रह्म चिदाकाशं नित्यं ब्रह्म निरञ्जनम् ।
शुद्धं बुद्धं सदामुक्तमनामकमरूपकम् ॥ ७०॥

मैं ब्रह्म चिदाकाश हूँ, नित्य ब्रह्म निरञ्जन हूँ, मैं शुद्ध, बुद्ध, सदामुक्त, अनात्म अथवा अरूप हूँ ॥७०॥

सच्चिदानन्दरूपोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत् ।
सत्यासत्यं जगन्नास्ति सङ्कल्पकलनादिकम् ॥ ७१॥

हे राजन् ! मैं सच्चिदानन्द-स्वरूप हूँ, यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है, सत्य-असत्य जगत् नहीं है, संकल्प कल्पना आदि नहीं है ॥७१॥

नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम् ।
अनन्तमव्ययं शान्तमेकरूपमनामयम् ॥ ७२॥

नित्य आनन्दमय केवल हमेशा आप है, अनन्त अविकारी शान्त एकरूप और अनामय है ॥७२॥

मत्तोऽन्यदस्ति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका ।
वन्ध्याकुमारवचने भीतिश्चेदस्ति किञ्चन ॥ ७३॥

हे निदाघ! यदि मुझ से कुछ अन्य है तो वह मृगजाल के समान मिथ्या है, यदि बन्ध्यापुत्र के वचन में भय है तो यह जगत कुछ है ॥७३॥

शशशृङ्गेण नागेन्द्रो मृतश्चेज्जगदस्ति तत् ।
मृगतृष्णाजलं पीत्वा तृप्तश्चेदस्त्विदं जगत् ॥ ७४॥

शशे के सींगों से हाथी मर जाए तो जगत् है, मृगतृष्णा जल से दृप्ति हो जाए तो यह जगत् है ॥७४॥

नरशृङ्गेण नष्टश्चेत्कश्चिदस्त्विदमेव हि ।
गन्धर्वनगरे सत्ये जगद्भवति सर्वदा ॥ ७५॥

मनुष्य के सींगों से नष्ट हो जाए तो यह जगत् भी है, गन्धर्वनगर के समय होने से जगत् हमेशा है ॥७५॥

गगने नीलिमासत्ये जगत्सत्यं भविष्यति ।
शुक्तिकारजतं सत्यं भूषणं चेज्जगद्भवेत् ॥ ७६॥

आकाश में नीलता सत्य है तो यह भी सत्य होगा। सीपी में रूपा सत्य हो तो यह जगत् भूषण होगा ॥७६॥

रज्जुसर्पेण दष्टश्चेन्नरो भवतु संसृतिः ।
जातरूपेण बाणेन ज्वालाग्नौ नाशिते जगत् ॥ ७७॥

रस्सी के सर्प से मनुष्य मर जाए तो यह संसार सत्य हो । सोने के बाण से ज्वाला अग्नि नाश हो जाए तो जगत् सत्य है ॥७७॥

विन्ध्याटव्यां पायसान्नमस्ति चेज्जगदुद्भवः ।
रम्भास्तम्भेन काष्ठेन पाकसिद्धौ जगद्भवेत् ॥ ७८॥

विन्ध्याचल के वन में वीर अर्थात दूध हो जाए तो जगत् उत्पन्न हुआ है। केले के स्तम्भ के काठ से रसोई बन जाए तो जगत् सत्य है ॥७८॥

सद्यः कुमारिकरूपैः पाके सिद्धे जगद्भवेत् ।
चित्रस्थदीपैस्तमसो नाशश्चेदस्त्विदं जगत् ॥ ७९॥

गवारपाठे के रूप से कुवारबूटी पाक सिद्ध हो जाए तो यह जगत् सत्य हो । चित्र के दीपक से अन्धकार दूर हो जाए तो यह जगत् सत्य है ॥७९॥

मासात्पूर्वं मृतो मर्त्यो ह्यागतश्चेज्जगद्भवेत् ।
तक्रं क्षीरस्वरूपं चेत्कचिन्नित्यं जगद्भवेत् ॥ ८०॥

महीने से पहले मरा हुआ मनुष्य आ जाए तो जगत् सत्य है। यदि छाछ का दूध बन जाय तो जगत् नित्य है ॥८०॥

गोस्तनादुद्भवं क्षीरं पुनरारोपणे जगत् ।
भूरजोऽब्धौ समुत्पन्ने जगद्भवतु सर्वदा ॥ ८१॥

हे राजन! गौ के थन से निकला हुआ दूध फिर उसी में भर दिया जाए तो जगत् सत्य है । मिट्टी के रेत में समुद्र उत्पन्न हो जाए तो जगत् हमेशा वस्तुतः है ॥८१॥

कूर्मरोम्णा गजे बद्धे जगदस्तु मदोत्कटे ।
नालस्थतन्तुना मेरुश्चालितश्चेज्जगद्भवेत् ॥ ८२॥

कछुए के रोम से मस्त हाथी बांध दिया जाए तो जगत् भी सत्य है। कमल डण्डी की तन्तु से मेरु चलने लगे तो जगत् सत्य है ॥८२॥

तरङ्गमालया सिन्धुर्बद्धश्चेदस्त्विदं जगत् ।
अग्नेरधश्चेज्ज्वलनं जगद्भवतु सर्वदा ॥ ८३॥

तरङ्गों की माला से समुद्र बांध दिया जाए तो जगत् है। अग्नि की ज्वाला नीचे को जाए तो जगत् सर्वदा है ॥८३॥

ज्वालावह्निः शीतलश्चेदस्तिरूपमिदं जगत् ।
ज्वालाग्निमण्डले पद्मवृद्धिश्चेज्जगदस्त्विदम् ॥ ८४॥

अग्नि की ज्वाला ठण्डी हो तो जगत् भी सत्य हो, जलती हुई अग्नि के मण्डल में कमलों की वृद्धि हो तो यह जगत सत्य है ॥८४॥

महच्छैलेन्द्रनीलं वा सम्भवच्चेदिदं जगत् ।
मेरुरागत्य पद्माक्षे स्थितश्चेदस्त्विदं जगत् ॥ ८५॥

महान् हिमाचल में नील हो तो जगत् सत्य हो, मेरु आकार नेत्र की पुतली में स्थित हो तो यह जगत् भी सत्य है ॥८५॥

निगिरेच्चेद्भृङ्गसूनुर्मेरुं चलवदस्त्विदम् ।
मशकेन हते सिंहे जगत्सत्यं तदास्तु ते ॥ ८६॥

भृङ्ग का शब्द वाणी रहित हो, मेरु चलायमान हो, मच्छर सिंह को मार डाले तो यह जगत् भी सत्य हो ॥८६॥

अणुकोटरविस्तीर्णे त्रैलोक्यं चेज्जगद्भवेत् ।
तृणानलश्च नित्यश्चेत्क्षणिकं तज्जगद्भवेत् ॥ ८७॥

अणु रूप कोटि के विस्तार होने से तीन लोक हों तो यह जगत् है। चणे के भूसा की अग्नि नित्य स्थित हो तो जगत सत्य है। ॥८७॥

स्वप्नदृष्टं च यद्वस्तु जागरे चेज्जगद्भवः ।
नदीवेगो निश्चलश्चेत्केनापीदं भवेज्जगत् ॥ ८८॥

स्वप्न की देखी कोई वस्तु जामत में रहे तो जगत् सत्य हो। नदी का वेग किसी प्रकार निश्चल हो जाए तो जगत सत्य हो ॥८८॥

क्षुधितस्याग्निर्भोज्यश्चेन्निमिषं कल्पितं भवेत् ।
जात्यन्धै रत्नविषयः सुज्ञातश्चेज्जगत्सदा ॥ ८९॥

भूखे का भोजन अग्नि हो तो जगत् की कुछ कल्पना हो सकती है। जन्म का अन्धा रत्न-परीक्षक हो तो यह जगत् सर्वदा हो ॥८९॥

नपुंसककुमारस्य स्त्रीसुखं चेद्भवज्जगत् ।
निर्मितः शशशृङ्गेण रथश्चेज्जगदस्ति तत् ॥ ९०॥

नपुंसक के पुत्र को स्त्री का सुख हो तो जगत् सत्य हो । शशे के सींगों से रथ बन जाय तो जगत् सत्य हो ॥९०॥

सद्योजाता तु या कन्या भोगयोग्या भवेज्जगत् ।
वन्ध्या गर्भाप्ततत्सौख्यं ज्ञाता चेदस्त्विदं जगत् ॥ ९१॥

तत्काल की जन्मी कन्या भोग के योग्य हो तो जगत सत्य है। बन्ध्या गर्भ के दुःख व सुख जानने वाली हो तो जगत् सत्य हो ॥९१॥

काको वा हंसवद्गच्छेज्जगद्भवतु निश्चलम् ।
महाखरो वा सिंहेन युध्यते चेज्जगत्स्थितिः ॥ ९२॥

काक हंस के समान चले तो जगत निश्चल हो । गधा सिंह के साथ युद्ध करे तो जगत् की स्थिति सत्य हो ॥९२॥

महाखरो गजगतिं गतश्चेज्जगदस्तु तत् ।
सम्पूर्णचन्द्रसूर्यश्चेज्जगद्भातु स्वयं जडम् ॥ ९३॥

गधा हाथी की चाल चले तो जगत् सत्य हो । चन्द्र सूर्य से प्रकाश किया हुआ सम्पूर्ण जगत् जड़ है ॥९३॥ ॥६३

चन्द्रसूर्यादिकौ त्यक्त्वा राहुश्चेद्दृश्यते जगत् ।
भृष्टबीजसमुत्पन्नवृद्धिश्चेज्जगदस्तु सत् ॥ ९४॥

चन्द्र सूर्यादि को छोड़ कर राहु दिखाई देता हो। भुना बीज उत्पन्न होकर बढ़े तो जगत् सत्य हो ॥९४॥

दरिद्रो धनिकानां च सुखं भुङ्क्ते तदा जगत् ।
शुना वीर्येण सिंहस्तु जितो यदि जगत्तदा ॥ ९५॥

दरिद्री धनवानों का सुख भोगे तो जगत् सत्य हो। कुत्ते के वीर्य से शेर उत्पन्न हो सके तो जगत् सत्य हो ॥९५॥

ज्ञानिनो हृदयं मूढैर्ज्ञातं चेत्कल्पनं तदा ।
श्वानेन सागरे पीते निःशेषेण मनो भवेत् ॥ ९६॥

मूढ़ पुरुष ज्ञानी के हृदय को जान ले तो जगत की कल्पना हो । कुत्ता सारे समुद्र को पान कर ले तो मन-जगत् हो ॥९६॥

शुद्धाकाशो मनुष्येषु पतितश्चेत्तदा जगत् ।
भूमौ वा पतितं व्योम व्योमपुष्पं सुगन्धकम् ॥ ९७॥

शुद्ध आकाश मनुष्यों पर गिर पड़े तो जगत् हो। अथवा भूमि पर आकाश गिरे या सुगन्धित आकाश-पुष्पों की सत्ता हो तो जगत् सत्य हो ॥९७॥

शुद्धाकाशे वने जाते चलिते तु तदा जगत् ।
केवले दर्पणे नास्ति प्रतिबिम्बं तदा जगत् ॥ ९८॥

शुद्ध आकाश में वन उत्पन्न हो और चले तो जगत् सत्य है । शुद्ध दर्पण में प्रतिबिम्ब नहीं पड़े तो जगत सत्य हो ॥९८॥

अजकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नहि ।
सर्वथा भेदकलनं द्वैताद्वैतं न विद्यते ॥ ९९॥

अज की कुक्षि में जगत् नहीं है । आत्मा की कुक्षि में जगत् नहीं है । भेद कलना द्वैत-अद्वैत किसी प्रकार से विद्यमान नहीं है ॥९९॥

मायाकार्यमिदं भेदमस्ति चेद्ब्रह्मभावनम् ।
देहोऽहमिति दुःखं चेद्ब्रह्माहमिति निश्चयः ॥ १००॥

यदि यह माया कार्य है, ऐसा भेद है तो वह ब्रह्म की भावना है। 'मैं देह हूँ' यह दुःख है तो 'मैं ब्रह्म हूँ' यह निश्चय है ॥१००॥

हृदयग्रन्थिरस्तित्वे छिद्यते ब्रह्मचक्रकम् ।
संशये समनुप्राप्ते ब्रह्मनिश्चयमाश्रयेत् ॥ १०१॥

हे राजन् ! हृदय-प्रन्थि के होने से ब्रह्मचक्र छेदा जाता है। संशय प्राप्त होने पर ब्रह्म के निश्चय का आश्रय करे ॥१०१॥

अनात्मरूपचोरश्चेदात्मरत्नस्य रक्षणम् ।
नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम् ॥ १०२॥

अनात्मरूप चोर है तो आत्मरूप रत्न को चोर से रक्षण करे । ब्रह्म नित्य आनन्दमय केवल सर्वदा आप है ॥१०२॥

एवमादिसुदृष्टान्तैः साधितं ब्रह्ममात्रकम् ।
ब्रह्मैव सर्वभवनं भुवनं नाम सन्त्यज ॥ १०३॥

इस प्रकार के दृष्टांतों से ब्रह्ममात्र साधा जाता है । ब्रह्म सब भवन है, भुवनों का नाम छोड़ दो ॥१०३॥

अहं ब्रह्मेति निश्चित्य अहम्भावं परित्यज ।
सर्वमेव लयं याति सुप्तहस्तस्थपुष्पवत् ॥ १०४॥

मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार निश्चय करके 'मैं भाव' को त्याग दे। सोये हुये के हाथ में रहे हुए पुष्प के समान समस्त ही लय हो जाता है ॥१०४॥

न देहो न च कर्माणि सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।
न भूतं न च कार्यं च न चावस्थाचतुष्टयम् ॥ १०५॥

नदेह है, न कर्म है, सब केवल ब्रह्म ही है। न भूत है, न कार्य है, न चार अवस्थाएं हैं ॥१०५॥

लक्षणात्रयविज्ञानं सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।
सर्वव्यापारमुत्सृज्य ह्यहं ब्रह्मेति भावय ॥ १०६॥

तीन लक्षणों का विज्ञान सब केवल ब्रह्म ही है । सब व्यापार छोड़कर 'मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार भावना करनी चाहिए ॥१०६॥

अहं ब्रह्म न सन्देहो ह्यहं ब्रह्म चिदात्मकम् ।
सच्चिदानन्दमात्रोऽहमिति निश्चित्य तत्त्यज ॥ १०७॥

सन्देह रहित मैं ब्रह्म हूँ, मैं चैतन्य-स्वरूप ब्रह्म हूँ। मैं सच्चिदानन्द मात्र हूँ, ऐसा निश्चय करके उसको भी छोड़ दो ॥१०७॥

शाङ्करीयं महाशास्त्रं न देयं यस्य कस्यचित् ।
नास्तिकाय कृतघ्नाय दुर्वृत्ताय दुरात्मने ॥ १०८॥

हे निदाघ! यह शंकर जी का विरचित महा शास्त्र नास्तिक, कृतघ्न, दुराचारी, दुष्टात्मा हर किसी को नहीं देना चाहिये ॥१०८॥

गुरुभक्तिविशुद्धान्तःकरणाय महात्मने ।
सम्यक्परीक्ष्य दातव्यं मासं षाण्मासवत्सरम् ॥ १०९॥

गुरुभक्ति से शुद्ध किये हुए अन्तःकरण वाले महात्मा को अच्छी तरह से मास, छह मास, एक वर्ष परीक्षा करके इसे देना चाहिये ॥१०९॥

सर्वोपनिषदभ्यासं दूरतस्त्यज्य सादरम् ।
तेजोबिन्दूपनिषदमभ्यसेत्सर्वदा मुदा ॥ ११०॥

सब उपनिषदों के अभ्यास को दूर से त्यागकर आदर सहित तेजोविन्दु उपनिषद् का सर्वदा प्रसन्न होकर अभ्यास करे ॥११०॥

सकृदभ्यासमात्रेण ब्रह्मैव भवति स्वयम् ।
ब्रह्मैव भवति स्वयमित्युपनिषत् ॥

हे निदाघ ! एक बार अभ्यास मात्र से आप ब्रह्म ही होता है । यह उपनिषद् है ॥

॥हरिः ॐ तत्सत् ॥

# शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु ॥ सह नौ भुनक्तु ॥ सह वीर्यं करवावहै ॥

तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इति तेजोबिन्दूपनिषत्समाप्ता ॥

॥तेजोबिन्दू उपनिषद समाप्त ॥

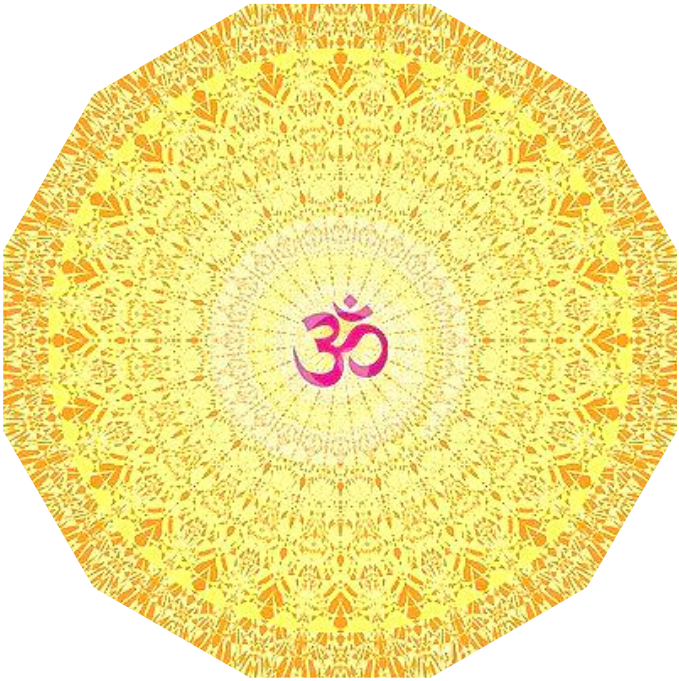

संकलनकर्ता:

**श्री मनीष त्यागी**

**संस्थापक एवं अध्यक्ष**
**श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन**

**www.shdvef.com**

**॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥**